श्रीमद् राजचन्द्र जन्मशताब्दी ग्रन्थमाला
प्रकाशन-छठा

श्रीमद् राजचन्द्र

—वचनामृत—

कर विचार तो पाम

हिंदी-संस्करण

भाग १ २

" जगतम मान न होता तो यहाँ ही मोक्ष होता ! '

प्रकाशक

त्रिकमलाल महासुखराम शाह-प्रमुख,
श्रीमद् राजचंद्र जन्मशताब्दी मंडल
श्री राजचंद्र वाचनालय, पंचभाईकी पोल,
अहमदाबाद-१

देहधारीने विडंबना तो एक धर्म है,
उसमें खेद करके आत्माका विस्मरण क्यों करें?
श्रीमद् राजचंद्र

मूल्य – ०-६० पै

सं २०२३
प्रत ५०००
प्रथमावृत्ति

मुद्रक
युनिटी प्रिन्टर्स,
हरषद म देसाई
दरबार गोपालदास रोड, वडोदरा

जिस ज्ञानसे कामका नाश हो,
उस ज्ञानको अत्यन्त भक्तिसे नमस्कार हो।

*

जिसका हृदय शुद्ध, संतका बताया गया
राह पर चलता है, उसको धन्य है।

*

दुःखका कारण एक मात्र विषम-आत्मा है।
अगर आत्मा सम है तो सब सुख ही है।

श्रीमद् राजचन्द्र

श्रीमद् राजचन्द्र हस्ताक्षर

શુદ્ધ બુદ્ધ ચૈતન્યઘન સ્વયંજ્યોતિ સુખધામ
બીજું કહીએ કેટલું કર વિચાર તો પામ

शुद्ध, बुद्ध, चैतन्यघन,
स्वयंज्योति सुखधाम
और कहें भी कितना ?
कर विचार तो पाम ॥

आत्मसिद्धिशास्त्र गा. ११७

આત્મભાવના ભાવતા
જીવ લહે કેવળજ્ઞાન રે

आत्मभावकी भावना करते करते
जीव केवलज्ञान प्राप्त करता है।



श्रीमद् राजचन्द्र
वर्ष ३४वा

श्रीमद् राजचन्द्र जन्मशताब्दी मंडल

समीपवर्ती सहजज्ञान वैराग्यमूर्ति श्रीमद् राजचन्द्रजीका जन्मशताब्दी विक्रम संवत् २०२४ के कार्तिक सुदी १५ के दिन आ रही है उसके उपलक्ष्यमें उस पुण्यनाम पुरुष उपकारकी यत्किंचित् पुनित स्मृतिके लिए इस 'श्रीमद् राजचन्द्र जन्मशताब्दी मण्डल की स्थापना हुई है।

श्रीमद् राजचन्द्रका जगत्-हितकारी परम कल्याणमय साहित्य, उनके जीवनके प्रसंग इत्यादि विविध भाषाओंमें प्रकाशित करनेका और विशाल जनसमुदाय इसका लाभ पा सके इस तरह उसका प्रचार करनेका इसका उद्देश्य रखा है।

१८६० एक्टके अनुसार मंडलकी रजीस्ट्री हो चुकी है। नियमपूर्वक व्यवस्थाके लिए ग्यारह सभासदोंकी एक 'व्यवस्थापक समिति' और प्रकाशनकार्यके लिए पाँच सदस्योंकी एक प्रकाशन समिति काम कर रही है।

उद्देश्य के अनुसार शुरू किये हुए प्रकाशन कार्य में यह 'कर विचार तो पाम' हिन्दी-संस्करण छठा पुस्तक है। अन्य पुस्तकों का काम भी चालू है।

विशेष आनन्द तो यह है कि श्रीमद् के प्रति भक्ति रखनेवाले विशाल समुदाय और श्रीमद्जी स्मृति स्थापित करनेवाले आप सब इस कार्य में उत्साहपूर्वक सहयोग दे रहे हैं और यही इस संस्था का बल है।

श्रीमद् के प्रति भक्तिवाले सभी भाई बहनों से इस कार्य में सहयोग देने की नम्र प्रार्थना है।

श्रीमद् राजचन्द्र पाठशाला	श्रीमद् राजचन्द्र जन्मशताब्दी महोत्सव
पंचभाई की पोळ,	कारोबारी समिति
अहमदाबाद	निवेदक महासुखराम शाह, प्रमुख

श्री विनोबाजीका पत्र—

विनोबा-निवास
जमशेदपुर
३०-९-६८

श्री सौभाग्यभाई,

श्रीमद् राजचन्द्र जन्मशताब्दी प्रकाशन समितिकी तरफसे "कर विचार तो पाम" और "राजपद" ये दो किताबें आपने प्रेमपूर्वक भेजी इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। "राजपद" में से दो पद "बहु पुण्य केरा पुंजथी" और "अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे"—ये तो मुझे कण्ठस्थ ही थे।

श्री राजचन्द्र जो भी लिखते थे, स्वानुभवकी कसौटी पर कस कर लिखते थे। उनकी प्रतिभा पारमार्थिक विषयोंमें प्रस्फुटित थी। और जैसा कि उन्होंने दावा किया है, वे सर्वथा पक्षपात रहित थे। उनके समग्र लेखनका एक बृहद् ग्रंथमें संग्रह किया हुआ मुझे पहले मिला था जिसमें वर्ष क्रमानुसार सारा लेखन पेश किया था। उसीमेंसे "कर विचार तो पाम" ये अमृतवचन दोहन किये हुए हैं। मुझे उससे बहुत तृप्ति हुई। यह किताब गुजराती पढ़नेवाले हरेक साधकके हाथमें पहुँचनी चाहिए। और इसका तर्जुमा अन्य भाषाओंमें भी होना चाहिये।

विनोबाका जय जगत्

हिन्दी-संस्करण

जगत आत्मरूप माना जाय
जो हो रहा, उसे योग्य माना जाय,
पराये दोष न देखे जायँ
अपने गुणोंकी उत्कृष्टता सहन की जाय,
—तभी इस संसारमें रहना उचित है
अन्यथा नहीं।

श्रीमद् राजचन्द्र—

"निःसंदेह ज्ञानावतार हैं और व्यवहारमें रहते हुए भी वीतराग हैं" ऐसे श्रीमद् राजचन्द्ररचित साहित्यमेंसे चुने हुए इन विचार-रत्नोंका यह हिन्दी संस्करण प्रकट करते हुए आनंद होता है।

हरएक मनुष्य इस संसारमें दुःखी है। वह जन्म, मरण तथा रोग, चिंता, व्याकुलता आदि दुःख बारम्बार

पाता रहता है इसमेंसे बचानेवाला मात्र आत्मज्ञान ही है। यह आत्मज्ञान जीव तभी प्राप्त करता है जब वह आत्मत्व प्राप्त पुरुषके सत्समागममें और उनके उपदेशानुसार, उन्होंने स्वानुभवसिद्ध जो मार्ग प्रकाशित किया है उसकी आराधना करता है, यह महात्माओंका प्रकट निश्चय है।

श्रीमद् राजचन्द्रके अनन्य उपासक तथा उनके साहित्यके तथारूप अनुभवी श्री लघुराज स्वामीके परिचयमें बरसों रहकर श्रीमद्जीके साहित्यकी उपासना करनेवाले श्री गुणभद्रजी पंडितने यह अनुवाद तैयार किया है। पंडितजीकी मातृभाषा हिन्दी है और उनका जैन साहित्यका अध्ययन भी अच्छा है इस सुमेलसे अनुवादको मूलके अनुरूप करनेका भरसक प्रयत्न किया गया है, और नडियाद निवासी श्री नारणभाई पटेलने इस अनुवादको आधुनिक हिन्दी भाषाका स्वरूप देकर इसे ओजस्वी और प्रेरणाप्रद बनानेका प्रयत्न किया है।

श्रीमद्जीका साहित्य अंतरात्मलक्षी, गंभीर और

दृष्टान्तों द्वारा उनका अनुवाद यथाशक्य शुद्ध करनेका प्रयत्न किया गया है फिर भी इसमें रही हुई त्रुटियों के लिए पाठकगणसे अनुरोध करता हूँ।

"अवर्ण्य आत्मस्थिति है जिनकी उन सत्पुरुषोंकी ही आत्मा या आत्मधर्म अवश्य करने योग्य है, यावत् आराधने योग्य है।" श्रीमद्का यह वचनामृत नित्य स्मरणमें रहकर और मार्गदर्शक बनकर हमारी भावनाको विशुद्ध करो।

ता. २८-–-६७
दांडिया बजार,
बड़ौदा।

श्रीमद् राजचन्द्र ज्ञान मंडल,
प्रकाशन समिति,
शामलाल चुन्नीलाल शाह, प्रमुख.



गुजराती द्वितीय संस्करणका प्रास्ताविक

जिस बिना अनन्तगुण प्रगटि न होना,
विवेक प्राप्त न हुआ, समाधि न हुई,
उस विज्ञान मन चैतन्य आग्रह रखना योग्य नहीं है।

श्रीमद् राजचन्द्र

कुछ ही मासमें प्रथम संस्करणकी २००० कापियां पूरी हो जानेसे इसका पुनर्मुद्रण शीघ्र ही करना पड़ा, इसमें मुझे हर्ष होता है।

इस संस्करणमें परिपूर्ति पृ … पर दिया जा रहा है उसके अनुसार श्रीमद्के साहित्यकी उपलब्धि पुस्तकमें अति उपयोगी है।

श्रीमद्के लेख उनके आत्मअनुभवमेंसे प्रगट हुए, श्रद्धायुक्त हृदयसे वाचन आनन्द होने पर साधकको आत्मशुद्धिका सुगम परंतु दुर्गम स्थानोंका मार्ग प्रस्थान करानेवाले साबित होंगे।

पाठकोंको इन वचनोंसे रसास्वाद तो प्राप्त होगा ही परन्तु ज्यों ज्यों उनकी गहराईमें उतरेंगे त्यों त्यों इसकी वृद्धि होगी और आत्मानुभवप्रमाण प्रगट होने पर दर्शन करेंगे।

इस साहित्यके साधकोंका अनुभव यह है कि इसका अध्ययन ज्यों ज्यों किया जाता है त्यों त्यों वह नित्य नूतन प्रेरणाका प्रेरक बनता जाता है।

अमृतवचनोंका यह दोहन श्रीमद्के साहित्यके अध्ययनमें अधिकाधिक प्रेरक बने यही अभ्यर्थना।

दांडिया बाजार, बड़ौदा-१
ता १-१०-१९६६

श्रीमद् राजचन्द्र जन्मशताब्दी मण्डल,
प्रकाशन समिति,
[illegible] चुनीलाल शाह, अध्यक्ष

प्रस्तावना

प्रथम आवृत्ति

शुक्ल अन्तःकरणके बिना
कौन मेरे कथनको न्याय करेगा?

जिसे निशदिन आत्माका उपयोग है, जिसका कथन अनुभवमें आता है, अन्तरंग में कोई स्पृहा नहीं है ऐसी जिसकी गुप्त आचरणा है उन सन्तमूर्ति श्रीमद् राजचन्द्रके आत्मस्पर्शी विचारोंसे समृद्ध विपुल साहित्यमें से विविध विषयोंको स्पर्श करनेवाले कितने ही वचनांश छाँटकर इस पुस्तक में यथास्थान दिया गया है।

सामान्य प्रकारसे प्रत्येक वचन एक सम्पूर्ण विचारको प्रेरणा करे, ऐसा लक्ष्य रखा गया है। किसी भी पृष्ठको खोलने पर उस पृष्ठ परके किसी भी एक वचनको पढ़कर यदि हम शान्तिसे विचार करेंगे तो श्रीमद्के अन्तरंगमें ओतप्रोत आत्मानुभवकी ज्योतिका दिव्य प्रकाश

हम लोगोंके अन्तरंगको प्रकाशित करेगा और अज्ञानजन्य हमारी दुविधाको दूर कर ज्ञानमय निर्मल आत्म-विचारकी ओर ले जायगा।

इस विश्वके अनेक दुःखोंको देखकर महापुरुषोंके हृदय निष्कारण करुणासे द्रवित हुए हैं। यह करुणा हम जैसे दुखियोंका दुःख दूर करनेमें परम समर्थ कारण है। इस जगतके परिनियम ज्ञात-अज्ञात भावसे जिन विचारोंकी परंपरासे हुए मालूम हैं और जगतके पदार्थ, प्रसंग और परिचर्याका हम जो मूल्य आंकते हैं, उससे मात्र दुःखकी ही वृद्धि हुई है—होती है, भविष्यमें भी होगी।

राग, द्वेष और अज्ञानकी निवृत्तिसे प्रगटित आत्मिक सुखमें निरन्तर सुखी महापुरुषोंकी दृष्टिमें इस जगतके पदार्थोंका जो मूल्यांकन है, वही सत्य सुखका हेतु है, यह बात समझमें आती है, और सच्ची मूल्यांकन दृष्टि प्राप्त होती है ऐसी प्रतीति श्रीमद्के वचनोंमें सतत अनुभवमें आयगी।

श्रीमद् कहते हैं कि —

परमानन्दरूप हरिका एक क्षण भी विस्मरण न हो, यह हमारी सब वृत्ति, वृत्ति और लेखका हेतु है।

विचारवानको यह वचन प्रतीतिकर होगा, और इस वर्तनाकी विचारश्रेणी परमानन्दरूप हरिका निरंतर स्मरण कराकर परमानन्दमय करेगी।

इस पुस्तकका नाम 'कर विचार तो पाम'' यह श्रीमद्का ही वचन है। अनुपम आत्मसिद्धि शास्त्रकी इनकी कृतिमें ९७ वें से ११८ वें में मोक्षके उपायकी श्रेणीका वर्णन करते हुए ११५ वें दोहे में कहा है कि ''हमें जो कुछ कहना था वह कह दिया अब तो तू विचारणा तो प्राप्त करेगा ऐसा कह कर ११८ वें दोहे में सहज स्वरूपस्थ हो जाते हैं।

इस प्रकार मोक्ष-मार्ग में विचारका ही मुख्य स्थान है। जिन्होंने जो विचारको इतना महत्व दिया है, यह

विचार कैसा और क्या इसे जाननेके लिए इनके थोड़ेसे वचनों पर दृष्टिपात करना योग्य है।

१ जिस वाचनसे, समझसे तथा विचारसे आत्मा विभावसे, विभावके कार्योंसे और विभावके परिणामोंसे विरक्त न हुआ, विभावका त्यागी न हुआ, विभावके कार्योंका और विभावके फलका त्यागी न हुआ, वह वाचन, वह विचार और वह समझ सब अज्ञान ही है।

विचारसहित साथ साथ त्यागवृत्ति उत्पन्न करनेवाला विचार ही सफल है। ज्ञानीके कहनेका यह परमार्थ है।

२ आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजाण,
गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान।

आत्मसिद्धि दो १२९

आत्माको अपने स्वरूपका भान नहीं इसके समान दूसरा कोई भी रोग नहीं सद्गुरुके समान उसका कोई सच्चा अथवा निपुण वैद्य नहीं, सद्गुरुकी आज्ञानुसार चलनेके समान दूसरा कोई पथ्य नहीं तथा विचार

र निर्ि त्यागनेके उत्तम उपायो दूसरा कार्य भौतिक-
ती है।

ज्यां प्रगटे सुविचारणा, त्यां प्रगटे निजज्ञान,
जे ज्ञाने क्षय मोह थई, पामे पद निर्वाण

आत्मसिद्धि दा ४१

जहां सुविचार दशा प्रगट हो, वहां आत्मज्ञान
प्रगट होता है, और उस ज्ञान से आत्मा मोहका क्षय कर
निर्वाणपदको पाता है।

१ एक मात्र जहां आत्म-विचार और आत्मज्ञानका
उत्पन्न होता है, वहां समस्त प्रकारकी आशाकी समाधि
(शान्ति) होकर जीवन स्वरूप से जिया जाता है।

आत्माकी अनादिकाल अज्ञान-भ्रान्तिसे मुक्त होकर
आत्मज्ञानको प्राप्त हो, आत्मभाव में स्थिर हो, ऐसी जो
विचारणा है वही सुविचार और करने योग्य है।

"आत्मको ज्ञान प्राप्ति हुई", यह तो निःसंशय है'

इस प्रकारके वचनोंसे जिसने अपनी अन्तरंग दशाका वर्णन किया है और जिनके वचनोंका यह संग्रह है, ऐसे श्रीमद् राजचन्द्रके जीवन और जीवन प्रसंगोंको जानने और समझनेके लिए "जीवनकला" और "जीवनयात्रा' ये दो पुस्तकें उपलब्ध हैं और हालमें "जीवन-साधना' प्रकाशित हो रही है- (भूमिकाके समय 'जीवन-यात्रा छप रहा थी परन्तु अब प्रकाशित हो चुकी है) वह पठन और विचारने योग्य है।

ऐसे आत्मानुभवी पुरुषके वचनोंमें बहते हुए आत्म लक्ष्मी सुविचार प्रवाह में पावन होकर अनन्त दुःखोंसे मुक्त होनेके लिए इनके आगम भावपूर्वक प्रवृत्ति करें यही प्रार्थना है।

" जहां सर्वोत्कृष्ट शुद्धि वहां सर्वोत्कृष्ट सिद्धि "

दरिया बाजार, बम्बई नं. १ — श्रीमद् राजचन्द्र जन्मशताब्दी मण्डल
१-११-१९६ — प्रकाशन समितिकी ओरसे
सामप्रचन्द चुनीलाल शाह, प्रमुख

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	९	मुरव	मुख
१४	७	दुख	दुःख
१७	४	पाया	पायी
१९	७	बर्मों	कर्मों
२६	८	रखो	रखा
२८	२	रख, क्या कि	रख, क्योंकि
३३	३	सत्पुरुषकी	सत्पुरुषकी
७०	६	दु ख	दुःख
७१	३	वसिष्ट	वशिष्ठ
७७	१०	निवृत	निवृत्त
७०	११	रखते	रखते
,,	,	लाकधम	लोकधर्म
८४	[illegible]	सहन	सहना
,	१२	दु खको	दुःखको
९२	८	लाककी	लोककी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९४	२	लाकिक	लौकिक
१०५	८	आय	जायँ
११७	१	चरणाम	चरणामें
११९	९	ञाना	ज्ञानी
१३३	३	दीखता	दीखना
१४४	३	उगाजित	उपार्जित
१४	४-८	ग्रहण हैं	ग्रहण है
१५३	४	लकन्ष्टि	लोकन्[illegible]
१७०	२	नाना	ज्ञानी
१७३	१	मूर्वि	मूर्ति
१७४	१	नहा	नहीं
१७८	१	लाकिक	लौकिक

श्रीमद् राजचन्द्र

—वचनामृत—

कर विचार तो पाम

भाग १

शुद्ध, बुद्ध, चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम,
बीजुं कहीए केटलुं ? कर विचार तो पाम

शुद्ध, बुद्ध, चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम,
और कहूँ मैं कितना ? कर विचार तो पाम

अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ?
क्यारे थईशुं बाह्यान्तर निर्ग्रंथ जो ?
सर्व सम्बन्धनुं बंधन तीक्ष्ण छेदीने,
विचरशुं कब महत् पुरुषने पंथ जो

अपूर्व०

ऐसा अपूर्व (अनोखा) अवसर कब आएगा ?
बाहर और भीतर कब निर्ग्रंथ बनेंगे ?
सब प्रकार के सम्बन्धों के बंधन का सम्पूर्ण छेदन कर,
महापुरुष के मार्ग पर कब चलेंगे ? (विचरेंगे)

तू चाहे किसी धर्म को मानता हो मुझे इसका पक्षपात नहीं।

कहने का तात्पर्य केवल यह है कि

जिस राहसे संसारमेल का नाश हो,

उस भक्ति, उस धर्म और उस सदाचार का तू सेवन करना।

*

सदाचार पवित्रता का मूल है।

*

जिंदगी अल्प है, और जंजाल लंबी।

जंजाल को कम कर तो, सुख के रूपमें जिंदगी लंबी लगेगी।

तू किसी भी व्यापार का करनेवाला हो, पर आजीविका के लिए अन्यायसम्पन्न द्रव्य उपार्जन न करना

*

वास्तविक सुख केवल वीतरागों में है। अतः अज्ञानी मोहियों के साथ सम्बन्ध-भावना न बढ़ाना।

*

यदि शुभोदायक कर्म का प्रारम्भ करना ही है तो
आज विलम्ब करने का दिन नहीं है, कारण,
आज के जैसा मंगलकारी दिन और कोई नहीं है।

मिताहार का नियम रखना और फुरसत के समय में संसार-निवृत्ति योजना।

*

सत्पुरुष विदुर के कह अनुसार आज ऐसा कृत्य कर, कि जिसमे रात को सुख की नींद सो सके।

*

कदम कदम-पर पाप है,
दृष्टिमें जहर है,
और मौत सिर सवार है,
यह सोच कर आत्मा दिन आराम कर।

यदि आज दहाड़े रोनेका दिल हो तो उस समय ईश्वर-भक्ति-परायण बन जाना या सत्शास्त्रका सेवन कर लेना।

मैं समझता हूँ ऐसा होना कठिन है फिर भी अभ्यास सबका उपाय है।

*

पुरातन बैर आज निर्मूल किया जाय तो उत्तम नहीं तो उससे सावधान रहना।

*

नया बैर भी मोल न लेना कारण यह कि बैर र य किस काल तक सुग भोगना है!—एसा वशानी सोचते हैं।

जिस घरमें आजका दिन बिना क्लेशके, स्वच्छतासे, शुचितासे, सुमेल और सन्तोषसे, सौम्यतासे, स्नेह, सभ्यता और सुखसे बीतेगा, उस घरमें पवित्रताका निवास है।



तू भले अपनी आजीविकाभर प्राप्त करता हो, परन्तु वह उपाधिरहित है, तो उस उपाधिमय राजसुखकी इच्छा करके तू अपना आजका दिन अपवित्र न कर।



परिग्रहकी मूर्च्छा पापका मूल है।

सरलता धर्मका बीजस्वरूप है।
प्रज्ञापूर्वक सरलताका सेवन किया जाय तो
आजका दिन सर्वोत्तम है।



आहार करना तो उस पुद्गलके समूहका एकरूप
मानकर करना परन्तु उसमें लुब्ध न होना।



वेदनीय कर्मका उदय हुआ हो तो उसे पूर्वकर्मस्वरूप
मानकर घबराना नहीं।

ममत्व ही बन्धन है,
बन्धन ही दुःख है।

*

पुण्य की अभिवृद्धि पर गर्वित या खुश न होना।

*

श्रम उद्योग का मूल है—आत्मलाभ।

बाँधनेवाला कोई नहीं है, अपनी भूलसे बँधता है।

*

एक को उपयोगमें लाओगे तो शत्रु सब दूर हो जाएँगे।

*

मैं कहाँसे आया?
मैं कहाँ जाऊँगा?
क्या मुझे बंधन है?
क्या करनेसे बंधन छूटे?
कैसे छूटा जाय?
—इन वाक्योंको स्मृतिमें रखना।

द्रव्य-कर्मको चुकानेकी चिन्ता रखने की अपेक्षा भाव-कर्मको चुकानेकी विशेष लक्ष रखना।

*

सुख-दुःख ये दोनों मनकी कल्पनाएँ हैं।

*

क्षमा ही मोक्ष का भव्य द्वार है।

*

नीति के नियमों को छोड़ना नहीं।

*

संसार में रहते हुए, और उसे नीतिपूर्वक भोगते हुए भी विदेही दशा रखना।

दुर्जनता करके बदला लेना ही हारना है, ऐसा मानना।

*

संसार की अनित्यता में सज्जनता ही नित्यतारूप है।

*

नीति के मार्ग में सज्जनता समझदार मार्गदर्शक है।

*

४' नीति है—वही समस्त आनन्द का कलेवर है।

आत्मा को सत्य रंग चढ़ावे वही सत्संग।
मोक्ष का मार्ग बतावे वही मैत्री।

*

समत्वभावी के मिलन को ज्ञानी एकान्त कहते हैं

*

गुणी के गुण में अनुरक्त बनो।

चञ्चल चित्त ही सब विषम दुःखों की जड़ है।

*

यह तो अचल सिद्धान्त मानना कि संयोग, वियोग, सुख दुःख, खेद, आनन्द अनराग, अनुराग, इत्यादि योग किसी व्यवस्थित कारण से होते हैं।

*

जिस कृत्य का परिणाम दुःख है, उसे सँमानने से पहले खूब सोचो।

आचरणमें बालक बनो,
सत्यमें जवान बनो,
ज्ञानमें वृद्ध बनो।

*

मनको वश किया उसने जगतको वश किया।

*

देव-देवियोंकी प्रसन्नताको क्या करोगे?
जगतकी प्रसन्नताको क्या करोगे?
प्रसन्नता सत्पुरुषकी चाहो।

सत्पुरुषके अन्तःकरणने जिसका आचरण किया या बोध किया वही धर्म।

*

जिसकी अन्तरंग मोहग्रंथी छूट गई, वह परमात्मा है।

*

सम्यग्नेत्र पाकर
तुम चाहे जिस धर्मशास्त्रका विचार करो तो भी आत्महितकी प्राप्ति होगी।

जगतमें मान न होता तो यहीं हो [illegible] हुआ।

*

ज्ञानीलोग कहते हैं, [illegible] ही सच्चा आहार-त्याग है।

*

जिसने समस्त जगत भिन्न होनेकी दृष्टि पाया नहीं, वह सद्गुरु [illegible] प्राप्त नहीं है।

'धर्म' यह वस्तु बहुत गुप्त रही हुई है।
वह बाह्य संशोधनसे नहीं मिलेगी।
अपूर्व अंतर संशोधनसे वह प्राप्त होती है।
वह अंतर संशोधन किसी महाभाग्यशालीको सद्गुरु के
अनुग्रहसे प्राप्त होता है।

*

राग के बिना संसार नहीं
और संसार के बिना राग नहीं।

*

'स्याद्वाद' से यह बात भी मान्य है कि
जो होनेवाला है वह बदलनेवाला नहीं
और जो बदलनेवाला है वह होनेवाला नहीं।
तो फिर धर्म के प्रयत्न में, आत्महित में अन्य
उपाधि के अधीन होकर प्रमाद क्यों धारण करें?

एक भव के अल्प सुख के लिए अनंत भव का अनंत दुःख न बढ़ाने का प्रयत्न सत्पुरुष करते हैं।

*

जो सदर प्रवृत्ति इह लोक में सुख का कारण तथा परलोक में सुख का कारण बने उस का नाम व्यवहार शुद्धि है।

*

सत्पुरुषों का महान बोध है कि

उदय में आये हुए कर्मों को भोगते हुए नये कर्मों का बंधन न हो इस के लिए आत्मा को सचेत रखना।

शास्त्रमें मार्ग बताया है, मर्म नहीं।
मर्म तो सत्पुरुषके अन्तरात्मामें रहा है।

*

परमात्माका ध्यान करनेसे परमात्मा बनते हैं।

*

परन्तु वह ध्यान आत्मा सत्पुरुषके चरणकमलकी विनयोपासना किये बिना पा नहीं सकता।

दूसरा कुछ भी मत खोज।
केवल एक सत्पुरुषको खोज कर, उसके चरणकमलमें
सर्व भाव अर्पण करके आचरण किये जा।
फिर भी यदि मोक्ष न मिले तो मुझसे लेना।
सत्पुरुष वही है जिसे निशदिन आत्मोपयोग रहता है
शास्त्रमें नहीं है और सुननेमें भी नहीं आया है,
फिर भी अनुभवगम्य है ऐसा जिसका कथन है
अंतरंगमें स्पृहा नहीं है ऐसी जिस की गुप्त आचरणा है।

देहमें विचार करनेवाला कौन है? वह क्या देहसे भिन्न है? वह सुखी है या दुःखी? इसका स्मरण कर।

*

पूर्वकर्म नहीं है ऐसा मानकर प्रत्येक धर्म का सेवन करते चलो।

ऐसा करते हुए भी पूर्वकर्म विघ्न डाले तो शोक न करना।

*

शुभाशुभ कर्म का उदय होने पर हर्ष या शोक किये बिना उन्हें भुगतने से ही छुटकारा है और यह वस्तु मेरा नहीं है ऐसा मान कर समभाव की श्रेणी बढ़ाते रहो।

आत्मा को पहचानना हो तो अन्दर [illegible] परन्तु न त्यागी बनो।

*

प्रशस्त पुरुष की भक्ति करो,
उस का स्मरण करो,
गुणचिन्तन करो।

*

जो ज्ञानी पौद्गलिक [illegible] है वह [illegible] तुच्छ ही है।

[illegible]

जब तक आत्मा आत्मभावसे अन्यत्र यानी
देहमात्रमें प्रवृत्ति करेगा,
मैं करता हूं ऐसी बुद्धि करेगा,
मैं रिद्धि आदिसे महान हूं ऐसा समझेगा,
शास्त्रको जाल समान समझेगा,
ममत्व लिए मिथ्या मार्ग करेगा,
तब तक उसको शान्ति होना दुर्लभ है।

इतने काल तक जो कुछ किया उस सबसे निवृत्त होओ, और उसे करते हुए अब रुको। (निं॰)।

*

किसी एक सत्पुरुषकी खोज करो और उनके चाहे जैसे वचनोंमें श्रद्धा रखो। (आत्मा)।

*

हे प्रभु, मैं तुझे निश्चयपूर्वक आज्ञा करता हूँ कि मेरे पैर नीति और नेकी न ठुकरायें।

सत्संगके अभावमें चढ़ी हुई आत्म-श्रेणी प्राय- पतित होती है।

*

किसीके भी दोष न देख।

जो कुछ होता है, तेरे अपने दोषसे होता है, ऐसा मान।

*

तू आत्म-प्रशंसा न करना, अगर करेगा तो तू ही तुच्छ है, ऐसा मैं मानता हूँ।

किसी भी तरह सद्गुरुकी खोज करना।

उन्हें पाकर उनके प्रति तन, मन, वचन और आत्मासे अपण बुद्धि करना।

उन्हींकी आज्ञाका सर्व प्रकारसे, निःशंक हो कर आराधना करना,

और तभी सब प्रकारकी मायिक वासनाका अभाव होगा ऐसा समझो।

*

मोक्षका मार्ग बाहर नहीं, परन्तु आत्मामें है। मार्ग पाया है वही मार्ग प्राप्त करायेगा।

[illegible],
[illegible],
[illegible],
    [illegible] है।

*

[illegible] है, [illegible]
[illegible]।

*

[illegible] है कि [illegible]
[illegible]।

अनंतकालसे अपनेको अपने स्वरूपकी भ्रान्ति रह गई है, यह एक अवाच्य अद्भुत विचारणाका स्थल है।

*

निरन्तर उदासीनताका क्रमका सेवन करना
सत्पुरुषकी भक्तिमें लीन होना,
सत्पुरुषोंके चरित्रोंका स्मरण करना
सत्पुरुषोंके लक्षणोंका चिन्तन करना,
सत्पुरुषोंकी मुखाकृतिका हृदयसे अवलोकन करना
उनके मन, वचन, कायाकी हर एक चेष्टाके अद्भुत रहस्योंका बार बार निदिध्यासन करना
और उनका सम्मत किया हुआ सर्व सम्मत करना।

[illegible]

०

[illegible]

०

[illegible]

जीव अपनी कल्पनासे चाहे किसी तरह भी सत्को प्राप्त नहीं कर सकता।

सजीवनमूर्तिके प्राप्त होने पर ही सत् प्राप्त होता है।
सत् समझमें आता है।
सत्का मार्ग प्राप्त होता है।
और सत् पर लक्ष्य आता है।
सजीवनमूर्तिके लक्ष्यके बिना जो कुछ भी किया जाता है, वह जीवको बन्धन है,
यह हमारा हृदय है।

ज्ञानकी प्राप्ति ज्ञानीसे ही होनी चाहिए।

*

जीव अपने आपको भूल गया है और इसीसे उसका सत्सुखसे वियोग हुआ है ऐसा सब धर्मोंमें माना है।

*

जीव अनंत काल तक अपने स्वच्छंदसे चल कर परिश्रम करे तो भी वह अपने आपसे ज्ञान नहीं पा सकता।

परंतु ज्ञानीकी आज्ञाका आराधक अंतर्मुहूर्तमें भी केवल ज्ञान पा सकता है।

भ्रमसे, भ्रान्तिसे या मायासे छूटना ही मोक्ष है यही मोक्षकी शाब्दिक व्याख्या है।

*

ज्ञानी पुरुष और परमात्मामें अन्तर नहीं है। जो कोई अन्तर मानता है उसे मायाकी प्राप्ति होना परम विकट है।

*

'परमात्मा ही देहधारीरूपमें प्रकट हुआ है,' ऐसी बुद्धि ज्ञानी पुरुषके प्रति उत्पन्न होने पर जीवको भक्ति उत्पन्न

ईश्वरेच्छाके अनुसार जो हो उसे होने देना, यह भक्तिमानके लिए सुखदायक है।

*

परमानन्दरूप हरिको एक क्षणके लिए भी न भूलना, यह हमारी सब कृति, शुचि और [illegible]का हेतु है।

*

जिसे (लगन) लगी है, उसीको लगी है, और उसीने उसको जाना है वही "पी पी" पुकारता है।

उसके ही चरणकमलमें लगती है और जब लगती है। तभी छुटकारा होता है।

इसके सिवाय और कोई मार्ग न

प्रत्यक्ष योग होने पर बिना समझाये भी स्वरूप स्थिति होनी सम्भवित मानता हूँ।

और इससे यही निश्चय होता है कि उस योगका और प्रत्यक्ष चिंतनका फल मोक्ष होता है क्योंकि मूर्तिमान मोक्ष वह सत्पुरुष ही है।



प्राय जीव जिस परिचयमें रहता है। उस परिचयरूप अपनेको मानता है।

इसका प्रत्यक्ष अनुभव भी है कि अनार्य कुलमें परिचय रखनेवाला जीव, अपनेको इच्छापूर्वक अनार्यरूप मानता है और आर्यत्वमें मति नहीं करता।

जीवको सत्संग ही मोक्ष का परम साधन है।

सत्संग जैसा श्रेय हितकारी साधन हमने इस जगतमें न देखा है न सुना है।

*

भक्ति पूर्णता पाने योग्य तभी होती है कि जब हरिसे एक तृणसी भी याचना नहीं करे। सब दशामें भक्तिमय ही रहना।

*

व्यवस्थित मन यह सब शुद्धिका कारण है।

प्रत्यक्ष योग होने पर बिना [illegible]
स्थिति होनी [illegible] मालूम हुई।

और इससे यही निश्चय होता है कि
और प्रत्यक्ष [illegible] फल [illegible] होनेमें
मूर्तिमान मेरु बड़ा [illegible] ही है।

*

प्रत्य जीव जिस परिग्रहमें रहता है। उस परि
ग्रहको अपना मानता है।

इसका प्रत्यक्ष अनुभव भी है कि अनन्त दु:
परिग्रह रखनेवाला जीव, अपनेको इच्छापूर्वक अनाथ
मानता है और आत्मामें मति नहीं करता।

महात्माका जिससे इन निश्चय होता है, उसकी मोहासक्ति दूर होकर, पर्यायका निर्णय होता है,

इससे व्याकुलता मिट जाती है।

इससे निराकुलता आती है।

इससे जीव सब प्रकारके दुःखोंसे निर्भय होता है

और उसीसे निराकुलता पैदा होती है

और ऐसा योग्य है।

'मुमुक्षुता' यही है कि सब प्रकारकी मोहासक्तिसे घबराकर एक मात्र मोक्षके लिए यत्न करना।

और 'तीव्र मुमुक्षुता' यह है कि अनन्य प्रेमसे मोक्षके मार्गमें प्रतिक्षण प्रवृत्ति करना।

*

मुमुक्षुके नेत्र महात्माको परख लेते हैं।

*

सत्पुरुषमें ही परमेश्वर-बुद्धि, इसे ज्ञानियोंने परम धर्म कहा है।

और यह बुद्धि परम दैन्यत्व सूचित करती है।

इससे सब प्राणियोंमें अपना दासत्व माना जाता है, और परम योग्यताकी प्राप्ति होती है।

ऐसा एक ही पदार्थ परिचय करने योग्य है कि जिससे अनंत प्रकारका परिचय निवृत्त होता है।

वह पदार्थ कौन सा?

और किस प्रकारसे?

इसका मुमुक्षुलोग विचार करते हैं।



जगतमें अच्छा दिखानेके लिए मुमुक्षु जीव कोई प्रवृत्ति न करे, परन्तु जो अच्छा है उसीका आचरण करे।



शास्त्र आदिके ज्ञानसे अंत नहीं आता, परन्तु अनुभवज्ञानसे अंत आता है।

जीव स्वभाव (अपनी स्वभावकी भूमिका) छोड़ि है फिर उसके दोषकी ओर देखना यह अनुभवका स्वप्न करा जैसा होता है।



सर्व शक्तिमान हरिकी इच्छा सदैव सुमङ्गल ही होती है और जिस पुरुषने भक्तिके कुछ भी अंश प्राप्त किये हैं उसे तो यही निश्चय करना चाहिए कि "हरिकी इच्छा सदैव सुमङ्गल ही होती है।"

अपनी इच्छासे किया हुआ दोष जीवको तीव्रतासे भोगना पड़ता है इस लिए किसी भी सग-प्रसगम स्वच्छासे अशुभ भावसे प्रवृत्ति न करनी पड़े ऐसा करना।

*

जिसके लिए आर्त्तध्यान करना पड़ता है वहाँसे या तो मन हटा लेना या वह कृत्य कर डालना। इस तरह उससे निवृत्त हुआ जायगा।

*

यदि उदयको अवध परिणामसे भोगा जाय तो ही उत्तम है।

ज्ञानीको समर्पण किये बिना इस कालमें जीवका देहाभिमान टलना सम्भवित नहीं है।

*

विचार करके वस्तुको बारम्बार समझना।

मनसे किये हुए निश्चयको साक्षात् निश्चय न मानना।

ज्ञानी द्वारा किये हुए निश्चयको जानकर प्रवृत्ति करनेमें कल्याण है।

जिंदगी अल्प है और बहुत श्रम
संख्यात धन है और तृष्णा बहु
वहाँ स्वरूपस्थिति का सम्भव न हो,
परन्तु जहाँ जंजाल अल्प है
और जिंदगी अप्रमत्त है
तथा तृष्णा अल्प है या नहीं,
और सर्वसिद्धि है,
वहाँ स्वरूपस्मृति पूर्ण होती है।

सांसारिक उपाधि हम भी कुछ कम नहीं है
तथापि उसमें निजपना नहीं रहनेके कारण उससे घबराहट नहीं उत्पन्न होती।

*

ज्यों ज्यों आरम्भ और परिग्रहका मोह मिटता जाता है,
त्यों त्यों उनमेंसे निजपनेका अभिमान मंद परिणामको पाता है,
त्यों त्यों मुमुक्षुता बढ़ती आती है।

अनादिकालसे जिसका परिचय है ऐसा यह अभिमान अब एकदमसे निकल नहीं हो जाता। इस लिए तन, मन, धन आदि जो कुछ 'अपनापन'के रहे हैं, वह सब ज्ञानीके अर्पण किया जाता है।

ज्ञानी प्राय उन्हें कुछ ग्रहण नहीं करते, परन्तु उनमेंसे 'अपनापन' मिटानेका उपदेश करते हैं और करने योग्य भी यही है कि आत्मपरिग्रहको [illegible] प्रसंग पर सब ज्ञानसमझ कर अपना [illegible] ।

तब मुमुक्षुता निर्मल होती है।

भ्रान्तिके कारण सुखरूप लगनेवाले इन संसारी प्रसंगों और प्रकारों में जब तक जीवको भ्रम रहा करता है तब तक जीवको निज स्वरूपका भान होना असम्भव है और सत्संग का महात्म्य भी यथातथ्यरूपसे भासमान होना असम्भव है।

जब तक यह संसारगत प्रेम असंसारगत प्रेममें बदल न जाय तब तक अप्रमत्ततासे बार-बार पुरुषार्थ करना अवश्य ही स्वीकार्य है।

जो कर्म उपार्जित नहीं किये वे भोगने नहीं पड़ते।

ऐसा समझकर दूसरे किसीके प्रति दोष-दृष्टि करनेकी वृत्तिको जैसे बने वैसे शान्त करके समतासे आचरण करना योग्य लगता है और यही जीवका कर्तव्य है।

*

सांसारिक उपाधिका जो कुछ भी होता हो, होने देना, यही कर्तव्य है।

धीरजपूर्वक उपयता वेदन करना योग्य है।

*

महात्माकी देह दो कारणोंसे विद्यमान है-प्रारब्ध कर्मको भोगनेके लिए, और जीवोंके कल्याणके लिए तथापि इन दोनोंमें वे उदास भावसे, उदय आयी हुई वर्तना अनुसार चलते हैं।

जगतके अभिप्रायको देख कर जीवने पदार्थका बोध पाया है, ज्ञानीके अभिप्रायको देख कर बोध नहीं पाया। जिस जीवने ज्ञानीके अभिप्रायसे बोध पाया है उस जीवको सम्यग्दर्शन होता है।

*

किसी भी तरह पहले तो जीवको अपनी अहंता दूर करना योग्य है।

देहाभिमान जिसका गलित हुआ है उसे सब कुछ सुगम ही है।

जिसे भेद नहीं, उसे खेदका सम्भव नहीं।

हरि-इच्छाके प्रति विश्वास दृढ़ रख कर बरतते हो, यह भी सापेक्ष सुगम है।

जिसे मोक्ष-मार्गकी उत्पत्ति होती है, उसे स्वरूप-गुप्तिमें पूर्ण तृप्ति रहती है, और निर्वाणकी अवलम्बन-दशा रहती है।

जिस जीवनमें परिवर्तन है उस जीवनको जानियो। निश्चल तत्त्व भी है यह एक अनादि की कथा है।

•

जिसे स्व का आत्मज्ञान हो जाता है, उसे 'मैं सब जानता रहता हूँ' ऐसा भाव उत्पन्न होकर स्वयं अपनी बुद्धि स्थिर होती है।

अनंतकाल व्यवहार करनेमें बिताया है, फिर उसकी जंजालमें परमार्थका विस्मरन न हो इस तरह ही चलना, यथा जिसका निश्चय है उसको वैसा होता है, यथा हम जानते हैं।

*

ज्ञानी अपना उपजीवन, आजीविका भी पूर्व कर्मके अनुसार करता है, जिससे ज्ञानमें प्रतिबद्धता आये इस तरहकी आजीविका न करता है, न करनेका प्रसंग चाहता है।

*

ज्ञानीके प्रति जिन्हें केवल निस्पृह भक्ति है, अपनी इच्छा उससे पूरी नहीं होती यह देखते हुए भी जिनके दिल में दोष नहीं आता, ऐसे जीवोंकी आपत्ति, ज्ञानीके आश्रय में धीरजपूर्वक रहते हुए, या तो नष्ट होती है या अति मंद हो जाती है।

किसीका भी, प्राणीका बुरा न चाहें, फिर भी शरीर द्वारा व्यावहारिक सबकी सेवा करना सम्भव नहीं।

•

सब प्राप्त हुए कर्तव्यका सदा पालन करना सम्भव है, किन्तु परिस्थिति परिवर्तन करना सम्भव नहीं।

•

दुःखकी निवृत्ति सब लोग चाहते हैं।

मगर दुःखकी निवृत्ति दुःख जिनसे पैदा होते हैं ऐसे राग, द्वेष, अज्ञान आदि दोषोंकी निवृत्तिके बिना, होना सम्भव नहीं है।

उन राग आदिकी निवृत्ति एक आत्मज्ञानके बिना दूसरे किसी प्रकारसे न भूतकालमें हुई है, न वर्तमान कालमें होती है, न भविष्यकालमें हो सकेगी।

हे राम! जिस अवसर पर जो प्राप्त हो जाय, उसी से संतुष्ट रहना, यह सत्पुरुषोंका कहा हुआ सनातन धर्म है—ऐसा वशिष्ठ कहते थे।

*

जिस जिस प्रकारसे आत्मा आत्मभावको प्राप्त करे, वे सब प्रकार धर्मके हैं।

आत्मा जिस प्रकारसे अन्यभावको प्राप्त करे, वह प्रकार अधर्मरूप है, धर्मरूप नहीं।

*

जीवके लिए धर्म, अपनी कल्पनासे या कल्पना-प्राप्त अन्य पुरुषसे, श्रवण करने, मनन करने या आराधना करने योग्य नहीं है।

केवल जिसकी आत्मस्थिति है ऐसे सत्पुरुषसे ही आत्मा या आत्मधर्म श्रवण करने योग्य है, यावत् आराधने योग्य है।

[illegible] देश [illegible] अब यह [illegible] मुश्किल नहीं है, और [illegible] अपनी निजि [illegible] पर निशानी [illegible] तथा [illegible] [illegible] फल पाना, यही अत्यन्त है।

•

[illegible] प्रवृत्ति [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मन हो जाय, इतना [illegible] है [illegible] [illegible]-[illegible] जाता है-उसी को मानो।

•

मानव भी इस काल में भी मनुष्य हो या पशु होता है परन्तु [illegible] दौलत ऐसे पुरुषों की प्राप्ति परम दुर्लभ है [illegible] दुर्लभ नहीं, मोक्ष [illegible] दुर्लभ है।

हे परम कृपालु देव! जन्म, जरा, मरणादि सर्व दुःखोंका क्षय करनेवाला ऐसा वीतराग पुरुषका मूल मार्ग आप श्रीमद्‌ने अनंत कृपा करके मुझे दिया, उस अनंत उपकारका प्रत्युपकार करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ और आप श्रीमान् कुछ भी लेनेमें सर्वथा निःस्पृह हैं, इस लिए मैं मन, वचन और कायाकी एकाग्रतासे आपके चरणारविंदमें नमस्कार करता हूँ। आपकी परम भक्ति और वीतराग पुरुषके मूल धर्मकी उपासना मेरे हृदयमें भवपर्यंत अखंड जागृत रहो, इतनी माँगना करता हूँ, वह सफल होओ।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

[illegible] पुरुषोंमें [illegible] [illegible] [illegible] अनुराग हुआ करता है [illegible] [illegible] [illegible] स्वरूपका [illegible] करके, वह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इसको [illegible] [illegible] हुआ है।

इस प्रकरणमें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्रसंग प्राप्त होते हैं, उन [illegible] जीवोंको यह परम [illegible] [illegible] है और [illegible] [illegible] [illegible] है कि [illegible] साधनकी कुछ [illegible] पड़ती है।

परमात्मा श्रीकृष्णके वचनके अनुसार मुमुक्षु [illegible] ये सब प्रसंग [illegible] [illegible] [illegible] प्रसंगों के कारण आवश्यक [illegible]

जहाँ कोई उपाय नहीं, वहाँ खेद करना योग्य नहीं है।

ईश्वरेच्छाके अनुसार जो होता है उसमें समता रखना ही योग्य है। और उसके उपायका यदि कोई विचार सूझ पड़े तो उसे किये जाना, बस यही हमारा उपाय है।

*

एक बार एक निश्चयके हो चुकने पर सम्बन्धी क्रिया-प्रक्रिया भी उपराम होगा, तब तो ईश्वरेच्छा होगी वही होगा।

*

किये हुए कर्म बिना भोगे निवृत्त होते नहीं, और नहीं किये हुए किसी कर्मका फल प्राप्त होता नहीं।

इसका हुआ कुछ रहता नहीं। क्योंकि ज्यादा हुआ कुछ सूझता नहीं। इस प्रकार पाप और विचार कर जिसके प्रति कोमल निश्चय व विचार दिखता हाथ नहीं।

ज्यादा तो दीनताका नहीं करना चाहिए।



परमार्थ-मार्गमें, जरूरत यह है कि ज्ञानियोंका सेवन करते हुए और, गुणोंमें या दुर्गुणोंमें सब प्रकारसे ऊपर हुआ करे।

दुःखसे कायर होना, क्योंकि दूसरे उपाय भी संभव है, परन्तु केवल-सुखमें मस्त होने पर भी कायरता, बल सुखमें अर्थात और निरन्तर परमार्थ प्रयत्न पुरुषार्थ ही होते हैं।

भौतिक सम्पदा, पैसा धन सम्पत्ति और [illegible] हुए भौतिक धन सम्पत्ति सबसे प्यारी मान्य है।

•

दूसरोंकी सम्पत्तिको देखकर चिन्ता न करना। यदि चिन्ता करना रहे तो वह सम्पत्तिमय गलत है।

•

सांसारिक कामोंकी निर्भरता [illegible] उन [illegible] न [illegible] करना, यही युक्तिपूर्ण मार्ग है।

•

अगर यथार्थ आवश्यकता हो तो उसे देखते हुए अधिक कामोंमें दिखावा नहीं होगी।

और उन दुःखोंको दूर करोगे तो इतनी अधिक दरकार भी नहीं होगी।

जो ईश्वरेच्छा होगी, सो होगा।

मनुष्यके लिए यथाबल प्रयत्न करना उचित है। और इसीसे अपने प्रारब्धमें जो होगा वह मिला करेगा।

अतः मनमें संकल्प-विकल्प नहीं करना।

*

कविता कवितार्थ आराधने योग्य नहीं है,

संसारार्थ आराधने योग्य नहीं है, भगवद् भजनार्थ या आत्मकल्याणार्थ यदि उसका प्रयोजन हो तो जीवको उस गुणकी क्षयोपशमताका फल है।

*

जिस विद्यासे उपशम-गुण प्रगट नहीं हुआ, विवेक पैदा न हुआ या समाधि न हुई उस विद्यामें भले जीवको आग्रह करना ठीक नहीं है।

मुमुक्षु जीवको इस कालमें संसारकी प्रतिकूल दशाएँ प्राप्त होना यह उसके लिए संसारसे पार होनेके बराबर है।

अनंत कालसे जिस संसारका अभ्यास हुआ है उसे स्वरूपसे छोड़नेका प्रसंग प्रतिकूल संयोगमें विशेष होता है यह बात निश्चितरूपसे मानने योग्य है।

*

व्यावहारिक प्रसंगोंकी नित्य चित्र-विचित्रता है। मात्र कल्पनासे उनमें सुख और कल्पनासे दुःख ऐसी उनकी स्थिति है। अनुकूल कल्पनासे वे अनुकूल लगते हैं और प्रतिकूल कल्पनासे वे प्रतिकूल लगते हैं और ज्ञानी पुरुषोंने उन दोनों कल्पना करनेका निषेध किया है।

विचारवानको शोक करना ठीक नहीं, ऐसा श्री तीर्थंकर कहते थे।

मूल रूपमें देखने पर अगर आत्मा मुमुक्षुता आयी हो तो उसका संसार-बल हररोज घटता रहे।

संसारमें धनादि संपत्ति घटे या न घटे, यह अनियत है, परन्तु जीवकी संसारके प्रति जो भावना है वह मन्द होती चले—क्रमशः नाश होने योग्य हो जाय।

*

जो जीव कल्याण की आकांक्षा रखता है, और जिसे प्रत्यक्ष सत्पुरुषका निश्चय है उसके लिए प्रथम भूमिकामें यह नीति मुख्य आधार है। जो जीव ऐसा मानता है कि उसे सत्पुरुषका निश्चय हुआ है परन्तु ऊपर कही हुई नीतिकी प्रधानता अगर उसमें नहीं है, और कल्याणकी याचना करता है या बात करता है, तो वह निश्चय मात्र सत्पुरुषको ठगनेके ही बराबर है।

जो मुमुक्षु जीव गृहस्थ-व्यवहारमें रहते हों, उन्हें पहले तो अखण्ड नीतिका मूल स्थापन करना चाहिए, नहीं तो उपदेश आदि निष्फल होते हैं।

द्रव्य आदि उत्पन्न करना इत्यादि व्यवहारोंमें सांगोपांग न्यायसम्पन्न रहना, इसका नाम नीति है। इस नीतिको त्यागनेमें प्राण जाने तक ऐसी दशाको प्राप्त करें तभी त्याग-वैराग्य अपने रूपमें प्रगट होते हैं। उस जीवको ही सत्पुरुषके वचनोंका और आत्मधर्मका अद्भुत सम्बन्ध, माहात्म्य और रहस्य समझमें आता है और [illegible] निरन्तर प्रवृत्ति करें ऐसा मार्ग स्पष्ट सिद्ध होता है।

संसारका स्वरूप बारम्बार ऐसा है—आत्माको एक बार घर और प्रतिक्षण ध्यान करे, यह मुमुक्षुका मुख्य लक्षण है।

*

ज्ञानी पुरुषकी जो [illegible] है वह [illegible] मनमें आई प्रतिबिंब समान है।

*

पानी स्वभावसे ही शीतल है तो भी उसे किसी बरतनमें रखकर, नीचे यदि आग जलती रखें तो, उसकी इच्छा न होने पर भी वह पानी उष्ण बनता है उसी तरह यह व्यवसाय भी, समाधिमें शांत ऐसे पुरुषके प्रति उष्णताका कारण बनता है।

वीतरागका कहा हुआ परम शान्त रसमय धर्म पूर्ण सत्य है, ऐसा निश्चय रखना। जीव अधिकारी न होनेसे तथा सत्पुरुषका योग नहीं होनेसे यह समझमें नहीं आता तथापि इसके समान जीवको संसार-रोग मिटानेका और कोई पूर्ण हितकारी औषध नहीं है ऐसा बार बार चिन्तन करना।

यह परम तत्त्व है, उसका मुझे सदा ही निश्चय रहे, यह यथार्थ स्वरूप मेरे हृदयमें प्रकाश करे और जन्म-मरण आदि बंधनकी अत्यन्त निवृत्ति हो, निवृत्ति हो।

वहाँ जहाँ इस जीवने जन्म लिया है, नाना प्रकार धारण किये हैं, वहाँ वहाँ उस प्रकारका अभिमान रहा है जिस अभिमानको निवृत्त किये बिना उन देहोंका और देहके संबंधमें आये हुए प्राणोंका इस जीवने त्याग किया है, अर्थात् अभी तक ज्ञानविचारसे उस भवको दूर नहीं किया है, और वे सब पूर्वकी दशाएँ ज्यों की त्यों इस जीवके अभिमानमें चली आ रही हैं। यही इस समस्त लोककी अधिकरण-क्रियाका हेतु कहा है।

जिन्हें स्वप्नमें भी संसारसुखकी इच्छा नहीं रही, और जिन्हें संसारका स्वरूप संपूर्ण निःसारभूत लगा है ऐसे ज्ञानी पुरुष भी आत्मावस्थाको बारम्बार सम्हाल सम्हाल कर, जो उदय हो उस प्रारब्ध का वेदन करते हैं, परन्तु आत्मावस्थामें प्रमाद नहीं होने देते। प्रमादको अवकाश होनेके कारण जिस संसार से ज्ञानी को भी किसी अधम व्यामोह होनेका संभव बताया है, उस संसारमें रह कर साधारण जीव अपना व्यवसाय लौकिक भावसे करते हुए आत्महित करना चाहे यह असंभव-सा कार्य है, क्योंकि लौकिक भावके कारण जहाँ आत्माको निवृत्ति नहीं होती, वहाँ और किसी रीतिसे हित-विचार होना संभव नहीं है।

आत्महितके लिए सत्संग जैसा सबल और कोई निमित्त दिखाई नहीं देता परन्तु जो जीव लौकिक भावसे अवकाश ग्रहण नहीं करता, उसे यह सत्संग भी प्राय निष्फल जाता है और यदि सत्संग थोड़ा फलदायी हुआ हो तो भी, लोकापेक्षा अधिकाधिक रहती हो तो वह फल निर्मूल होनेमें देर नहीं लगती।

विचारवान जीवको यह अवश्य कर्तव्य है कि चाहे किसी तरह परभावके परिचित कार्यसे दूर रहना-निवृत्त होना। विचारवान जीवको प्राय यही बुद्धि रहती है तथापि किसी प्रारब्धके वश परभावका परिचय प्रबलतासे उदय हो, उस समय निजपदकी बुद्धिमें स्थिर रहना विकट है ऐसा मानकर सदा निवृत्त होनेकी बुद्धिकी विशेष भावना करते रहना चाहिए ऐसा महान पुरुषोंने कहा है।

*

जो धर्म संसारको परिक्षीण करानेमें सबसे उत्तम हो, और निजस्वभावम स्थिति करानेमें बलवान हो, वही धर्म उत्तम और वही बलवान है।

श्रीमद् राजचन्द्र

—वचनामृत—

कर विचार तो पाम

भाग २

*

शुद्ध, बुद्ध, चैतन्यघन,
स्वयंज्योति सुखधाम,
और कहूँ मैं कितना ?
कर विचार तो पाम।

शत्रु या मित्र के प्रति रहे समदर्शिता,
मान-अपमान में भी वही स्वभाव रहे,
जीवन या मरण में भी न्यूनाधिक भाव न रहे,
जन्म या मोक्ष में भी शुद्ध स्वभाव रहे,
ऐसा अपूर्व अवसर कब आएगा!

राग, द्वेष और अज्ञान ही कर्मोंकी मुख्य गाँठ है, जिससे उसकी निवृत्ति हो वही मोक्षका मार्ग है।

मुमुक्षु जीवको अर्थात् विचारवान जीवको इस संसारमें अज्ञानके सिवाय और कोई भय नहीं है।

एक अज्ञानकी निवृत्तिकी इच्छा रखना, इस एक इच्छाके सिवाय विचारवान जीवको अन्य इच्छा न हो।

विचारवान्के चित्तमें यह विचार निश्चयरूपसे रहा करता है कि—संसार कारागृह है, समस्त लोक दुःखसे कारण पीड़ित है, भय के कारण आकुल-व्याकुल है और राग-द्वेषके प्राप्त फलमें प्रज्वलित है।

इनकी प्रान्तिमें कुछ अन्तराय है इसलिये कारागृहरूप संसार मुझे भयका हेतु है और लोक-संग करने योग्य नहीं है यही एक भय विचारवान्को उचित है।

सब जीव आत्मरूपसे सम-स्वभावी हैं। दूसरे पदार्थमें यदि जीव निज बुद्धि करे तो परिभ्रमण दशाको पाता है और यदि निजमें निज-बुद्धि करे तो परिभ्रमण दशा टलती है।



उपार्जित प्रारब्ध यदि बिना भोगे ही नष्ट हो तो फिर सभी मार्ग मिथ्या ही सिद्ध हों।



श्री जिन आत्मपरिणामकी स्वस्थताको समाधि और आत्मपरिणामकी अस्वस्थताको असमाधि कहते हैं।

अस्वस्थ कायकी प्रवृत्ति करना और आत्मपरिणाम स्वस्थ रखना ऐसी विषम प्रवृत्ति श्री तीर्थंकर जैसे ज्ञानीसे होना कठिन कही है, तो फिर अन्य जीवसे यह बात संभवित होना कठिन हो इसमें आश्चर्य नहीं है।

*

जितनी संसारमें सारपरिणति मानी जाय उतनी ही आत्मज्ञानकी न्यूनता श्री तीर्थंकरने कही है।

*

श्री जिन द्वारा कहे गये सब पदार्थ भाव एक आत्माको प्रकट करनेके वास्ते हैं।

मोक्षमार्गमें प्रवृत्तिके लिए दो मार्ग हैं
एक आगमज्ञानी और
दूसरा आत्मज्ञानीका आश्रयज्ञान
ऐसा श्री जिन भगवानने कहा है।

*

ज्ञानी पुरुषको समागम करनेसे आत्माका प्रतिबंध होता है और जब बार बार परमार्थ दृष्टि मिटकर अंतराय दृष्टि हो जाती है। ज्ञानीके प्रति ऐसी दृष्टि होने पर पुनः सुलभबोधिता पाना कठिन होता है।

*

ऐसे बाह्य आडम्बरकी तनिक भी इच्छा न करना कि जिससे शुद्ध व्यवहार या परमार्थको हानि पहुँचे।

जब तक सब प्रकारसे विराम स्थानोंमें समाहित न हो तब तक यथार्थ आत्मज्ञान नहीं कहा जा सकता।

*

ज्ञानी पुरुषके वचनका जिसे दृढ़ आश्रय हो उसे सब साधन सुलभ हो जाय, ऐसा अखंड निश्चय सत्पुरुषोंने किया है।

*

जिस प्रारब्धको भोग बिना और कोई उपाय नहीं है, वह प्रारब्ध ज्ञानीको भी भोगना पड़ता है। ज्ञानी अंत तक आत्मार्थको त्यजना नहीं चाहता, यही फर्क ज्ञानीमें होता है।

संसार के क्लेशरूप आरम्भ-परिग्रहके कार्यमें रहते हुए यदि यह जीव जरा भी निर्भय या अनाकुल रहे तो बहुत वर्षोंका उपासित वैराग्य भी निष्फल हो जाय, ऐसी दशा हो जाती है।

इस बातको हर काम, हर क्षण और हर प्रसंगमें स्मरणमें रखे बिना मुमुक्षु जीवकी मुमुक्षुता रहनी दुर्लभ है और ऐसी दशाका वेदन किये बिना मुमुक्षुताका भी संभव नहीं है।

सब पापपथको सोच सोच कर निवृत्त करना यह छूटनेका एक मार्ग है जीव जितना इस बातको सोचेगा उतना ही ज्ञानपुरुषके मार्गको समझनेका समय समीप प्राप्त होगा।

*

समस्त संसार मृत्यु आदि, भयसे अशरण है, यह शरणका हेतु हो ऐसी कल्पना करना स्वप्न मृगजल जैसा है। विचार कर कर के श्री तीर्थंकर जैसोंने भी उससे निवृत्त होना, छूटना यही उपाय खोजा है।

*

अन्य पदार्थका जो कुछ विचार करना है वह जीवके मोक्षके हेतु करना है, अन्य पदार्थके ज्ञानके लिए नहीं।

आत्म-परिणामकी स्वस्थताको श्री तीर्थंकर 'समाधि' कहते हैं।

आत्म-परिणामकी अस्वस्थताको श्री तीर्थंकर 'असमाधि' कहते हैं।

आत्म-परिणामकी सहज-स्वरूपमें परिणति हो, उसे श्री तीर्थंकर 'धर्म' कहते हैं।

आत्म-परिणामकी कुछ भी चपल परिणति हो उसे श्री तीर्थंकर 'कर्म' कहते हैं।

किसी भी जीवको अविनाशी देहकी प्राप्ति हुई हो, ऐसा देखा नहीं, जाना नहीं, तथा सम्भवित भी नहीं है, और मृत्युका आना तो अवश्य है, ऐसा प्रत्यक्ष निःसंशय अनुभव है; फिर भी यह जीव उस बातको पुनः पुनः भूल जाता है, यह बड़ा आश्चर्य है।

*

जिस सर्वज्ञ वीतरागमें अनंत सिद्धियाँ प्रकट हुई थीं, उस वीतरागने भी इस देहको अनित्य-भावी देखा है, तो फिर अन्य जीव किस प्रयोगसे देहको नित्य (अविनाशी) कर सकेंगे?

आरम्भ-परिग्रहका अल्प करनेसे अ-सत्प्रसंग का बल कम होता है
सत्संगके आश्रयसे असत्संगका बल घटता है
अ-सत्संगका बल घटनेसे आत्मविचार करनेका अवकाश मिलता है

आत्मविचार होनेसे आत्मज्ञान होता है
और आत्मज्ञानसे निजस्वभावस्वरूप, सब क्लेशों और सब दुःखोंसे मुक्त ऐसा मोक्ष होता है, यह बात निःसंदेह सच है।

जो जीव मोहनिद्रामें सोये हुए हैं वे अ-मुनि हैं। मुनि तो निरंतर आत्मविचारसे जागृत रहते हैं। प्रमादीको सर्वथा भय है, अप्रमादीको किसी तरह भय नहीं है।

*

सब पदार्थोंका स्वरूप जाननेका हेतु एक मात्र आत्मज्ञान प्राप्त करना ही है। अगर आत्मज्ञान नहीं हुआ तो सब पदार्थोंका ज्ञान निष्फल है।

*

अन्य परिणाममें (जीवकी) जितनी तादात्म्यवृत्ति है, उतना ही मोक्ष दूर है।

अगर कोई आत्मयोग बन सका तो इस मनुष्य-देह-धारणका मूल्य किसी तरह भी नहीं हो सकता।

*

श्री जिन भगवान जैसे अन्तःत्यागी भी जिसे छोड़कर चल दिये ऐसे भयके हेतुरूप उपाधियोगकी निवृत्ति करते करते यदि यह पामर जीव काल व्यतीत करेगा तो अश्रेय होगा।

*

आत्मपरिणामसे जितना अन्य पदार्थका तादात्म्य-अध्यास छोड़ा जाय उसे श्री जिन भगवानने त्याग कहा है।

ज्ञानी पुरुषके चरणोंमें मन स्थापित किये बिना भक्तिमार्ग सिद्ध नहीं होता।

ज्ञानी पुरुषके चरणोंमें मन लगाना पहले तो कठिन लगता है परन्तु वचनकी अपूर्वतासे, उस वचन पर विचार करनेसे तथा ज्ञानीके प्रति अपूर्व दृष्टिसे देखनेसे, मनका स्थापित होना सुलभ बनता है।

उपाधि की जाय, फिर भी केवल असंग दशा बनी रहे, यह होना अति-कठिन है और उपाधि करते हुए आत्मपरिणाम चंचल न हो, यह होना असंभवित सा है।

*

जन्म, जरा, मरण आदि दुःखोंसे समस्त संसार अशरण है। जिसने सब तरहसे उस संसारकी आस्था छोड़ी है, उसीने आत्मस्वभावको पाया है और (वही) निर्भय हुआ है।

*

जैसा निज स्वरूप है वैसा संपूर्ण प्रकाशित हो वहाँ तक निज स्वरूपके निदिध्यासनमें स्थिर रहनेके लिए ज्ञानीपुरुषके वचन आधारभूत हैं।

जिस तरह शरीरसे वस्त्र अलग है, वैसे ही आत्मासे शरीर अलग है, ऐसा जिन पुरुषोंने देखा है वे पुरुष धन्य हैं।

*

दूसरेकी वस्तु अपनेसे ग्रहण हो गई हो, और जब यह मालूम हो कि यह दूसरेकी है, तब उसे दे देनेका ही काम महापुरुष करते हैं।

*

जगतके सब पदार्थोंकी अपेक्षा जिस पर सर्वोत्तम प्रीति है, ऐसी यह देह भी जब दुःखका हेतु है, तो फिर अन्य पदार्थमें सुखके हेतुकी क्या कल्पना करना ?

यह कोई नियम नहीं है कि ज्ञानी निर्धन हो या धनवान हो, या अज्ञानी निर्धन हो या धनवान हो।

*

पूर्वनिष्पन्न शुभाशुभ कर्मके अनुसार दोनोंको उदय रहता है। ज्ञानी उदयमें सम रहता है, अज्ञानीको हर्ष-विषाद होता है।

*

विचारवानको देह छूटनेकी बाबत हर्ष-विषाद करना उचित नहीं। आत्मपरिणामकी विभाव दशा ही हानि और वही मुख्य मरण है। स्वभावसन्मुखता तथा उसकी दृढ़ इच्छा भी उस हर्ष-विषादको दूर करती है।

सहज स्वरूपमें जीवकी स्थिति होना उसे श्री वीतराग 'मोक्ष' कहते हैं।

*

सर्वभावसे असंगता होना, यह सब साधनोंसे दुष्कर से दुष्कर साधन है और उसका निराश्रयतासे सिद्ध होना अत्यंत दुष्कर है—यह विचारकर श्री तीर्थंकरने सत्संगको उसका आधार कहा है कि जिस सत्संगके योगसे जीवको ऐसी सहज स्वरूपभूत असंगता उत्पन्न होती है।

अपने दोषोंको प्रतिक्षण, प्रत्येक कार्यमें और प्रत्येक प्रसंगमें तीक्ष्ण उपयोगपूर्वक देखना और देखकर उनका क्षय करना।

*

असंगताके लिए यदि देहत्याग करनेका अवसर आता हो तो उसका भी स्वीकार करना, परन्तु उसमें किसी पदार्थमें विशेष भक्ति-स्नेह होने देना योग्य नहीं।

*

सत्संगकी अर्थात् सत्पुरुषकी पहचान होने पर भी यदि वह योग निरंतर न रहता हो तो सत्संगसे प्राप्त हुए उपदेशको प्रत्यक्ष सत्पुरुषसम मानकर उसका विचार तथा आराधन करना कि जिस आराधनासे जीवको अपूर्व ऐसा सम्यक्त्व उत्पन्न होता है।

जीवको सबसे मुख्य और सबसे अवश्य ऐसा निश्चय रखना चाहिए कि मुझे जो कुछ करना है, वह आत्माके कल्याणरूप हो उसे ही करना है।

*

मिथ्या प्रवृत्तिमें तन्मयता न हो यह ज्ञानका लक्षण है और नित्य-प्रति मिथ्या प्रवृत्ति परिक्षीण होती रहे यही सत्यज्ञानकी प्रतीतिका फल है।

*

सत्समागम और सत्शास्त्रका लाभ चाहनेवाले मुमुक्षुओंको आरम्भ-परिग्रह और रस-स्वादादिका प्रतिबन्ध संक्षिप्त करना उचित है।

जब तक अपने दोष विचार कर उन्हें कम करनेकी प्रवृत्ति न कर सके तब तक सत्पुरुषके कहे हुए मार्गका परिणाम पाना कठिन है। इस बात पर मुमुक्षु जीवोंको खास विचार करना योग्य है।

*

सर्व प्रतिबंधोंसे मुक्त हुए बिना सर्व दुःखोंसे मुक्त होना संभव नहीं।

*

अनन्त विध बहुत करके परकथा तथा परवृत्तिमें बहा करता है उसमें रह कर स्थिरता कैसे प्राप्त हो!

निमित्तसे जिसे हर्ष होता है,
निमित्तसे जिसे शोक होता है,
निमित्त पाकर जिसे इन्द्रियजन्य विषयोंकी ओर आकर्षण होता है,
निमित्त पाकर जिसे इन्द्रियोंके प्रतिकूल प्रकारोंमें द्वेष होता है,
निमित्त पाकर जिसे उत्कर्ष आता है
निमित्त पाकर जिसे कषाय उत्पन्न होते हैं,
ऐसे जीवको यथाशक्ति उन सब निमित्तवासी जीवोंका संग त्यजना चाहिए और नित्यप्रति सत्संग करना उचित है।

सब जीवोंको अप्रिय होने पर भी जिस दुःखका अनुभव करना पड़ता है वह दुःख सकारण होना चाहिए इस भूमिकासे विचारवानकी विचारश्रेणी मुख्यतया उदित होती है और उस परसे क्रमशः आत्मा, कर्म, परलोक, मोक्ष आदि भावोंका स्वरूप सिद्ध हुआ हो, ऐसा लगता है।

*

ज्यों ज्यों चित्तकी शुद्धि और स्थिरता होती जाती है त्यों त्यों ज्ञानीके वचनोंका विचार यथायोग्य हो सकता है।

*

परन्तु ज्ञानका फल भी आत्मस्थिरता होना ही है, ऐसा वीतराग पुरुषोंने कहा है।

गया हुआ एक क्षण भी वापस नहीं आता, और वह अमूल्य है, तो फिर समस्त आयुष्य-स्थिति की तो बात ही क्या!

*

आत्मस्वरूपको जैसा है वैसा ही जाना, उसका नाम है समझना, इससे अन्य विकल्परहित उपयोग हुआ इसका नाम शमन है, वस्तुत दोनों एक ही हैं।

*

जो जो समझे उन्होंने मेरा-तेरा आदि अहंता-ममताका शमन किया क्योंकि कोई भी निज-स्वभाव वैसा देखा नहीं। और निज-स्वभाव तो अचिंत्य, अव्याबाधस्वरूप केवल न्यारा ही देखा इसलिए उसीमें समा गये।

मुमुक्षु जीवको आत्महेतुभूत संगके सिवाय सब प्रकारके संगको कम करना चाहिए क्योंकि इसके बिना परमार्थका प्रकट होना कठिन है।

*

संयोग (संबंध) समस्त दुःखोंका मूल है, यों ज्ञानी तीर्थंकरोंने कहा है तथा समस्त ज्ञानी पुरुषोंने देखा है।

*

आत्माको समझनेके लिए शास्त्र उपकारी हैं और वे स्वच्छन्दरहित पुरुषोंके लिए ही। यह लक्ष्यमें रखकर सत्शास्त्रोंका विचार किया जाय तो उसे 'शास्त्रीय अभिनिवेश' मानना योग्य नहीं है।

जो चक्रवर्ती आदि पद उत्कृष्ट संपत्तिके स्थान हैं उन सबको अनित्य देखकर विचारवाले पुरुष उन्हें छोड़कर चल पड़े हैं

अथवा प्रारब्धने उन्यसे उत्तम रहना हुआ था भी उसे प्रारब्धभोग्य समझकर अमूर्छित और उदास भावसे रहे हैं और त्यागका लक्ष्य रखा है।

सब प्रकारके भयके रहनेके स्थानरूप इस संसारमें केवल एक वैराग्य ही अभय है।

*

स्वरूपमें स्थितिको 'परमार्थ संयम' कहा है और उस संयमके कारणभूत ऐसे अन्य निमित्तोंके ग्रहणको 'व्यवहार संयम' कहा है।

*

असंग ऐसा आत्मस्वरूप सत्संगके योगसे सबसे सुलभ रीतिसे मालूम होने योग्य है इसमें संशय नहीं।

जितनी अपनी शक्ति हो उस सब शक्तिसे एक लक्ष्य रखकर, लौकिक श्रभिनिवेशको कम कर, 'कुछ भी श्रपूर्व श्रावरणरहितपना नहीं दीखता इसलिये आपको यह समझकर कि 'यह तो केवल समत्वका अभिमान है,' जिस प्रकारसे ज्ञान, दर्शन श्रौर चारित्रमें जीव सतत जागृत रहे वही करनेमें वृत्तिको जोड़ना श्रौर रात-दिन उसी चिंतनमें रहना यही विचारवान जीवका कर्त्तव्य है।

जब तक जीवको यथार्थ आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होता तब तक बंधनकी आत्यंतिक निवृत्ति नहीं होती, इसमें संशय नहीं।

*

उस आत्मज्ञानकी प्राप्ति होने तक जीवको मूर्तिमान आत्मज्ञान-स्वरूप ऐसे सद्गुरुदेवका निरंतर आश्रय अवश्य करने योग्य है इसमें संशय नहीं है। उस आश्रयका वियोग हो तब तक आश्रय भावना नित्य करने योग्य है।

*

सब कार्योंमें कर्तव्य केवल आत्मार्थ ही है, मुमुक्षु जीवको ऐसी सम्भावना नित्य करना योग्य है।

घर विचार दो पाम

सुख और आनन्द सब प्राणियों, सब जीवों, सब दों और सब जन्तुओंको निरन्तर प्रिय हैं फिर भी वे दुःख और क्लेश भोगते हैं, इसका क्या कारण होना चाहए।

प्रश्न और उसके द्वारा जिन्दगीका हीन उपयोग।

(हम) हीन उपयोगको रोकनेकी हरेक प्राणीकी इच्छा होनी चाहिए।

इस जीवको देहका सम्बन्ध होकर यदि मृत्यु न होता तो इस संसारके सिवाय अन्यत्र उसकी वृत्ति ले जानेका विचार न होता।

*

दुर्लभ ऐसी मनुष्यदेह भी पूर्वकालमें अनन्त बार प्राप्त हुई फिर भी कुछ भी सफलता नहीं हुई।

*

इस मनुष्यदेहकी सार्थकता है कि जिस मनुष्य देहसे इस जीवने ज्ञानी पुरुषको पहचाना तथा उस महाभाग्यका आश्रय लिया कि जिस पुरुषके आश्रयसे अनेक प्रकारके मिथ्या आग्रह आदि मन्द हुए उस पुरुषके आश्रयमें यह देह छूट जाय यही सार्थक है

जिसमें जन्म-जरा-मरण आदिको नष्ट करनेवाला आत्मज्ञान विद्यमान है उस पुरुषका आश्रय ही जीवको जन्म-जरा-मरण आदिका नाश कर सकता है क्योंकि यही यथासम्भव उपाय है।

*

जिस आश्रयको पाकर जीव इसी समय या [illegible] अल्प कालमें भी निजस्वरूपमें स्थिति कर [illegible] [illegible] आश्रयपूर्वक देह छूटे, यही उत्तम साधन है।

*

श्री सद्गुरुने कहा है ऐसा निर्ग्रन्थ मार्ग [illegible] [illegible] आश्रय रहे।

मैं देहादि स्वरूप नहीं हूँ और देह, [illegible] कोई भी मेरा नहीं है मैं शुद्ध चैतन्य स्वरूप [illegible] ऐसा आत्मा हूँ—इस प्रकार आत्मभावना [illegible] [illegible] रागद्वेषका क्षय होता है।

जिसकी मृत्युसे मैत्री हो अथवा जो मृत्युसे छूटकर भाग जा सकता हो अथवा मैं मरूँगा ही नहीं ऐसा जिसका निश्चय हो, वह भले ही सुखसे सोए।

*

विचारवान पुरुष तो कैवल्यदशा प्राप्त होने तक मृत्युको सदा समीप समझकर प्रवृत्ति करते हैं।

*

लोक-समुदाय कोई भला होनेवाला नहीं है, अथवा स्तुति-निंदाके प्रयत्नके लिए विचारवानको इस देहकी प्रवृत्ति कर्तव्य नहीं है।

लौकिक दृष्टि और अलौकिक (लोकोत्तर) दृष्टिमें महान भेद है अथवा दोनों दृष्टियाँ परस्पर विरुद्ध स्वभाववाली हैं।

लौकिक दृष्टिमें व्यवहार (सामाजिक कारणों) की मुख्यता होती है और अलौकिक दृष्टिमें परमार्थकी मुख्यता है। इसलिए अलौकिक दृष्टिको लौकिक दृष्टिके फलके साथ प्रायः (बहुत करके) मिला देना योग्य नहीं।

अन्तर्मुखवृत्ति रहित बाह्य क्रियायें विधि-निषेधमय हों तो भी वास्तविक कल्याण नहीं है। गच्छादि मदाग्रह निमग्नता, विविध प्रकारके विकल्पोंको सिद्ध करनेमें आत्माका आवरण करने बराबर है।

*

अनेकान्तिक मार्ग भी सम्यक् एकान्त एवं निजपदकी प्राप्ति करानेके सिवाय और किसी हेतुसे उपकारक नहीं है।

जैन और दूसरे सब मार्गोंमें (सम्प्रदायोंमें) प्राय मनुष्य देहका विशेष माहात्म्य बताया है, यानी मोक्ष-साधनका कारणरूप होनेसे उसे चिन्तामणि समान कहा है, यह सच है।

परन्तु यदि उससे मोक्षकी साधना की हो, तभी उसका यह महात्म्य है वरना वास्तविक दृष्टिसे उसकी कीमत पशुके देह जितनी भी नहीं दीखती।

*

मनुष्यका आत्मामें यथेष्ट विश्वास दृढ़ निश्चय रहता है और जो उस निश्चयकी आराधना करता है, उसे वह फल अवश्यंभावी होता है, यह बात [illegible] [illegible] ध्यानमें रखने योग्य है।

देहके लिए अनन्तबार आत्माको गलाया है। जो देह आत्माके लिए गलायी जायगी, उस देहसे आत्म विचार जन्म लेने योग्य है ऐसा मानकर, सब देहार्थोंकी कल्पना छोड़कर, एक मात्र आत्मार्थमें उसका उपयोग करना है, ऐसा निश्चय मुमुक्षु जीवको अवश्य करना चाहिए।

*

जो ज्ञान महानिर्जराका हेतु होता है, वह ज्ञान अनधिकारी जीवके हाथमें जानेसे प्राय उसे अहितकारी होकर फलता है।

*

परिग्रह आदिकी प्राप्तिके काम ऐसे हैं कि वे प्राय आत्मकल्याणका अवसर ही प्राप्त नहीं होने देते।

जब तक यह जीव लोकदृष्टिका त्याग न करे, और उसमेंसे अन्तर्वृत्ति छूट न जाय तब तक ज्ञानीकी दृष्टिका वास्तविक माहात्म्य लक्षमें नहीं आ सकता इसमें संशय नहीं।



ज्ञानियोंने मनुष्यभवको चिन्तामणि रत्नके [illegible] है, इसका यदि विचार करो तो यह प्रत्यक्ष [illegible] सकता है।



देहात्ममें ही यदि यह [illegible] हुआ तब तो एक फूटी कौड़ीकी [illegible] नहीं है, ऐसा निःसंशय मालूम होता है।

मुमुक्षु जीव लौकिक कारणोंमें अधिक हर्ष-विषाद नहीं करता।

*

आजीविका आदिकी प्राप्ति पूर्वके उपार्जित शुभ-अशुभ कर्मोंके अनुसार होगी ऐसा विचारकर मुमुक्षु जीवको मात्र निमित्तरूप प्रयत्न करना उचित है, परंतु भयाकुल होकर चिंता या न्यायका त्याग करना उचित नहीं, क्योंकि यह तो केवल व्यामोह है जो शमन करने योग्य है।

*

प्राप्ति शुभ-अशुभ प्रारब्धके अनुसार होती है, प्रयत्न (पुरुषार्थ) व्यावहारिक निमित्त है इसलिए उसे करना उचित है परंतु चिंता तो केवल आत्मगुण-रोधक है।

लौकिक दृष्टिमें जो जो बातें या वस्तुएँ बड़प्पनकी मानी जाती हैं वे सब बातें या वस्तुएँ—शोभायुक्त गृह आदिका आरम्भ, अलंकार आदिका परिग्रह, लोकदृष्टिकी विचक्षणता, लोकमान्य धर्मश्रद्धालुता—प्रत्यक्ष जहरका ग्रहण है ऐसा यथार्थ समझे बिना, मानने हो उस वृत्तिका लक्ष्य नहीं होता। आरंभमें उन बातों और वस्तुओंके प्रति जहर-दृष्टि आना कठिन समझकर कायर न होने हुए पुरुषार्थ करना उचित है।

विषमभावके निमित्तोंके बलवानरूपसे प्राप्त होने पर भी जो ज्ञानीपुरुष अविषम उपयोगसे रहे हैं, रहते हैं और भविष्यमें रहेंगे उन सबको बारम्बार नमस्कार है।

*

यदि सफलताका मार्ग समझमें आ जाय तो इस मनुष्य देहका एक समय भी सर्वोत्कृष्ट चिंतामणि है, इसमें संशय नहीं।

*

राग-द्वेषके प्रत्यक्ष बलवान निमित्तोंके प्राप्त होने पर भी जिसका आत्मभाव किंचित भी क्षोभ नहीं पाता, उस ज्ञानीके ज्ञानका विचार करनेसे भी महानिर्जरा होती है, इसमें संशय नहीं।

'<u>ज्ञानका फल विरति है</u>' वीतरागका यह वचन सब मुमुक्षुओंको नित्य स्मरणमें रखने योग्य है।



जिस पढ़नेसे, समझनेसे और विचारनेसे आत्मा विभावसे, विभावके कार्यसे और विभावके परिणामसे उदासीन न हुआ, विभावका त्यागी न हुआ, विभावके कार्योंका और विभावके फलका त्यागी न हुआ, वह पढ़ना, वह समझना और वह विचारना अज्ञान है।

विचारवृत्तिके साथ त्यागवृत्तिको उत्पन्न करना यही विचार सफल है—यह कहनेका ही ज्ञानीका परमार्थ है।

एकाकी विचरता वळी स्मशानांत,
वळी परतता वात सिद्ध मयांग वा
अगाल आग्न, न मनला नर्त्य भाम्ला,
परम मित्रता जाती पाम्या याम वा,
अपूर्व अवसर अवा क्यारे आवशे

स्मशानमें अकेला भ्रमण करते हुए, और वन तथा सिंहका मिलन होने पर अडोल-स्थिर बने रहें और मनमें क्षोभ न होकर परम कर्म करना मेरे किसी परम मित्रका सम्मान हुआ है ऐसा अवसर [redacted] प्राप्त होगा !

जहाँ उपाय नहीं, वहाँ खेद करना योग्य नहीं है।

*

इस जगतमें प्राणीमात्रकी व्यक्त या अव्यक्त इच्छा भी यही होती है कि मुझे किसी तरह दुःख न हो और सर्वथा सुख हो। प्रयत्न भी इसीके लिए है फिर भी वह दुःख क्यों नहीं मिटता !

*

सतत अंतर्मुख उपयोगमें स्थिति यही निर्ग्रंथका परम धर्म है।

परमयोगी पसे श्री [illegible] किन्तु देहरो न रहना चाहें, [illegible] रही है कि जब तक [illegible] नीय असंग और निर्मोह [illegible] स्वरूप ऐसा निरवलम्ब [illegible] अलग हो जाय, [illegible] न रहे।

इस देह द्वारा करने योग्य काम तो एक ही है कि किसीके प्रति राग या किसीके प्रति किंचित् भी द्वेष न रहे—सर्वत्र समदृष्टि रहे यही कल्याण का मुख्य निश्चय है।

*

जो कोई सच्चे अंतःकरणसे सत्पुरुषके वचनोंको ग्रहण करेगा वह सत्यको पाएगा इसमें कोई संशय नहीं और शरीरका निर्वाह आदि व्यवहार सबके अपने अपने प्रारब्धके अनुसार ही प्राप्त होना योग्य है, इसलिए इस विषयमें भी कोई विकल्प रखना योग्य नहीं।

जो अनित्य है, जो असार है और जो अशरण रूप है वह इस जीवको प्रीतिका कारण क्यों होता है? यह बात दिन-रात सोचने योग्य है।



लोकदृष्टि और ज्ञानीकी दृष्टिमें पश्चिम-पूर्व जितना अंतर है। ज्ञानीकी दृष्टि प्रथम तो निरालंबन होती है, वह रुचि उत्पन्न नहीं करती, और जीवकी प्रकृतिसे मिलती नहीं आती, इसलिए जीव उस दृष्टिमें रुचिवाला नहीं होता। परन्तु जिन जीवोंने परिषहका सहन करके थोड़े समय तक भी उस दृष्टिका आराधन किया है उन्होंने सब दुःखोंके क्षयरूप निर्वाणको पाया है—उसका उपाय पाया है।

जिसने संसारके स्वरूपको स्पष्टरूपसे जाना है उसे इस संसारके पदार्थकी प्राप्ति या अप्राप्ति होने पर हर्ष या शोक होना योग्य नहीं।

*

जिसे आरंभ-परिग्रह पर विशेष रुचि रहती है उस जीवमें सत्पुरुषके वचनोंका या सत्संगका परिणमन होना कठिन है।

*

जैसे जैसे जगतकी सुखकी स्पृहामें खेद उत्पन्न होता है, वैसे वैसे ज्ञानीका मार्ग स्पष्ट सिद्ध होता है।

सत्पुरुषोंका केवल अन्तर्मुख होनेका मार्ग ही सब दुःखोंके क्षयका उपाय है परन्तु वह किसी किसी जीवको ही समझमें आता है।

महान पुण्यके योगसे, विशुद्ध मतिसे, तीव्र वैराग्यसे और सत्पुरुषके समागमसे वह उपाय समझमें आने योग्य है।

उसके समझनेका अवसर एक यह मनुष्य देह है और वह भी अनियमित कालके भयसे ग्रस्त है, उसमें प्रमाद होता है यही खेद और आश्चर्य है।

सत्समागम, सत्शास्त्र और सदाचारमें दृढ़ निवास, ये आत्मदशा होनेके बलवान अवलंबन हैं। सत्समागमका योग होना दुर्लभ है तथापि मुमुक्षु जीवको उस योगकी तीव्र जिज्ञासा रखना और उसको प्राप्त करना योग्य है। उस योगके अभावमें तो जीवको अवश्य ही सत्शास्त्ररूप विचारका अवलंबन करके सदाचारकी जागृति रखना योग्य है।

*

परिणाम तो जिसका अमृत ही है, परन्तु प्रारंभिक दशामें जो कालकूट विषकी तरह व्याकुल कर देता है, ऐसे श्री संयमको नमस्कार हो।

जिस समय विषय-कषाय आदि विशेष विकार उत्पन्न करके जायें, उस समय विचारवानको अपनी निर्बलता देखकर अत्यन्त खेद होता है और वह अपनी (आत्माकी) बारम्बार निन्दा करता है। वह पुनः अपनेको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखकर, फिरसे महान पुरुषोंके चरित्र और वाक्योंका आधार ग्रहण कर, आत्मामें शौर्य उत्पन्न कर, उन विकारोंके विरुद्ध अत्यन्त हठ करके उन्हें हटा न दे तब तक वह चैनसे नहीं बैठता, तथा सिर्फ खेद करके ही नहीं रुक जाता।

आत्मार्थी जीवोंने इसी वृत्तिका अवलम्बन किया है और अन्तमें उन्होंने इसीसे जय पायी है। यह बात सब
८ मुमुक्षुओंको मुखाग्र करके हृदयमें स्थिर करना योग्य है।

अवधानाके लिए अविरमभावर बिना दूसरा कोइ अधिकार हमको भी नहीं है।

*

जिस तरह मुमुक्षुता दृढ हो वैसा करो हार मानेका या निराश होनेका कोई कारण नहीं है। जीवको जब दुर्लभ योग प्राप्त हुआ है तो फिर थोड़ा प्रमाद छोड़ देनेमें घबराने या निराश होने जैसा कुछ भी नहीं है।

*

बहुतसे शास्त्र और वाक्योंके अभ्यासकी अपेक्षा, अगर जीव ज्ञानी पुरुषकी एक एक आज्ञा[illegible] करे तो अनेक शास्त्र[illegible] [illegible]ने [illegible] प्राप्त हो।

दुःषमकालका प्रबल राज्य चल रहा है, फिर भी अडग निश्चयसे सत्पुरुषकी आज्ञामें रुचि लगाकर जो पुरुष प्रकट वीर्यसे सम्यक् ज्ञान, दर्शन और चारित्रकी उपासना करना चाहते हैं उन्हें परम शान्तिका मार्ग अब भी प्राप्त हो सकता है।

*

देहसे भिन्न स्व-पर-प्रकाशक परम ज्योति-स्वरूप ऐसे इस आत्मामें निमग्न होओ। हे आर्यजनो! अंतर्मुख होकर, स्थिर होकर उस आत्मामें ही रहो तो अनन्त अपार आनंदका अनुभव करोगे।

जिसकी इन्द्रियाँ विषयसे व्याप्त हैं, उसे शीतल आत्मगुण, आत्मवशी प्रतीति कहाँसे हो !

*

"जहाँ सर्वोत्कृष्ट शुद्धि है वहाँ सर्वोत्कृष्ट सिद्धि है।" हे आर्यजनो ! तुम इस परम वाक्यका आत्मासे अनुभव करो।

*

खेद न करते हुए, शूरवीरताको ग्रहण करके ज्ञानीके मार्गपर चलनेसे मोक्ष-नगरी सुलभ ही है।

समस्त जगतके जीव कुछ न कुछ पाकर सुख प्राप्त करना चाहते हैं।

महान चक्रवर्ती राजा भी अपने हुए वैभव और परिग्रहके संकल्पमें प्रयत्नशील रहता है और प्राप्त करनेमें सुख मानता है।

परन्तु अहो! ज्ञानियोंने तो उससे उलटा ही सुखका मार्ग निर्णीत किया है कि किंचित् मात्र भी ग्रहण करना सही सुखका नाश है।

जिसे कुछ प्रिय नहीं, जिसे कुछ अप्रिय नहीं जिसका कोई शत्रु नहीं, जिसका कोई मित्र नहीं, जो मान-अपमान, लाभ-अलाभ, हर्ष-शोक, जन्म-मृत्यु आदि द्वंद्वों का अभाव करके शुद्ध चैतन्यस्वरूप में स्थित हुए हैं, होते हैं और होंगे, उनका अति उत्कृष्ट पराक्रम आनन्दाश्चर्य उत्पन्न करता है।

जैसा देहके साथ वस्त्रका संबंध है, वैसा ही आत्माके साथ देहका संबंध जिसने सही सही देखा है, म्यानके साथ जैसा तलवारका संबंध है वैसा ही देहके साथ आत्माका संबंध जिसने देखा है, अबद्ध-स्पृष्ट आत्माका जिसने अनुभव किया है उस महापुरुषका जीवन और मरण दोनों समान हैं।

जिस अचिंत्य द्रव्यकी शुद्ध चैतन्य स्वरूप परम कान्ति प्रकट होकर उसे अचिंत्य करती है, वह अचिंत्य द्रव्य सहज स्वाभाविक निजस्वरूप है ऐसा निश्चय जिस परम कृपालु सत्पुरुषने प्रकाशित किया है उसका अपार उपकार है।

*

अनन्त कालसे जो ज्ञान संसारका कारण होता था उस ज्ञानको एक समयमात्रमें जात्यंतर करके संसारकी निवृत्तिरूप जिसने बनाया उस कल्याणमूर्ति सम्यग्-दर्शनको नमस्कार हो।

अज्ञानसे और स्व-स्वरूपके प्रति प्रमादसे आत्माको केवल मृत्युकी भ्रान्ति ही है।

उस भ्रान्तिको निवृत्त कर, शुद्ध चैतन्य निजअनुभव-प्रमाणस्वरूपमें परम जाग्रत होकर, ज्ञानी सदा निर्भय रहता है। इसी स्वरूपके लक्ष्यसे सब जीवोंके प्रति साम्यभाव उत्पन्न होता है।

*

जिसकी उत्पत्ति अन्य किसी भी द्रव्यसे नहीं होती, ऐसे उस आत्माका नाश भी कहाँसे हो?

श्रीमत् अनंत चतुष्टयस्थित भगवानका और उस जयवंत धर्मका सदैव आश्रय करना चाहिए।

जिसमें अन्य कोई सामर्थ्य नहीं है ऐसे अशक्त और अबुध मनुष्यने भी उस आश्रयके बलसे परम सुखके हेतु ऐसे अद्भुत फलको पाया है, पाता है और पाएगा। इसलिए निश्चय और आश्रय ही कर्तव्य है अ-धीरजसे खेद कर्तव्य नहीं है।

मेरा चित्त, मेरी चित्तवृत्तियाँ इतनी शान्त हो जाओ कि कोई मृग भी इस शरीरको देखता ही रहे, भयभीत होकर भाग न जाय।

*

मेरी चित्तवृत्ति इतनी शान्त हो जाओ कि कोई वृद्ध मृग, जिसके सिरमें खुजली आ रही हो, इस शरीरको जड़ पदार्थ समझकर खुजली मिटानेके लिए अपना सिर इस शरीरसे घिसे।

*

हे जीव! इस क्लेशरूप संसारसे निवृत्त हो, निवृत्त हो।

गृहवासका जिसे उदय रहता है, वह यदि किसी भी शुभ कामकी प्राप्ति चाहता हो तो उसको मूल दृढ़भूत एवं अमुक सदाचरणपूर्वक रहना योग्य है। उन अमुक नियमोंमें 'न्याय संपन्न आजीविका आदि व्यवहार' इस पहले नियमको साध्य करना उचित है।

*

यदि तुम स्थिरता चाहते हो तो प्रिय या अप्रिय वस्तुमें न मोह करो, न राग करो, न द्वेष करो।

*

यह प्रवृत्ति-व्यवहार ऐसा है कि जिसमें वृत्तिको यथाशान्त रखना असम्भव जैसा है।

अहो सत्पुरुषके वचनामृत, मुद्रा और [illegible]! सुषुप्त चेतनाको जगानेवाले, पतित वृत्तिको [illegible] वाले, दर्शनमात्रसे भी निर्दोष, अपूर्व [illegible] स्वरूप प्रतीति, अप्रमत्त संयम, और पूर्ण [illegible] स्वभावके कारणभूत और अन्तमें [illegible] प्रगट करके अनन्त अव्याबाध स्वरूपमें [illegible]! त्रिकाल जयवन्त रहो!

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

अनंत अव्याबाध सुखका एक अनन्य उपाय स्वरूपस्थ होना ही है। यही हितकारी उपाय ज्ञानी पुरुषने देखा है।

*

प्राणीमात्रका रक्षक, बांधव और हितकारी ऐसा कोई उपाय हो तो वह वीतरागका धर्म ही है।

*

समस्त संसारी जीव कर्मवश साताअसाताके उदयका अनुभव करते ही रहते हैं, उसमें मुख्यतया तो असाताका ही उदय अनुभवमें आता है।

लौकिक भयको छोड़कर, कुलधर्मको त्यागकर, कल्पित विधि-निषेधसे दूर रहकर जो जीव प्रत्यक्ष ज्ञानीकी आज्ञाका आराधन कर, तथारूप उपदेशको पाकर, तथारूप आत्मार्थमें प्रवृत्ति करता है उसका अवश्य कल्याण होता है।

*

विनय-भक्ति मुमुक्षुओंका धर्म है।

*

अनादि कालसे चंचल ऐसे मनको स्थिर करना चाहिए। प्रथम वह अतीव विरोध करे इसमें कोई आश्चर्य नहीं। उस मनको महात्माओंने क्रमशः स्थिर किया है, शान्त किया है—क्षय किया है—यह सचमुच आश्चर्यकारक है।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] और [illegible]
[illegible] है।

यथार्थरूपसे देखें तो शरीर ही वेदनाकी मूर्ति है। हर समय जीव उसके द्वारा वेदनाका ही अनुभव करता है। क्वचित् साता और अधिकतर असाताका ही अनुभव करता है।

*

जो वेदना पूर्वकालमें शुभ बन्धनसे जीवने बाँधी है, उस वेदनाके उदय प्राप्त होनेपर उसे इन्द्र, चन्द्र, नागेन्द्र या जिनेन्द्र भी रोकनेको समर्थ नहीं, उसका उदय जीवको वेदन करना ही चाहिए।

अज्ञान-दृष्टिके जीव उसका वेदन खेदसे करें, तो भी वह वेदना कुछ घटती नहीं, या दूर जाती नहीं।

सत्य दृष्टिके जीव शान्त-भावसे (उसका) वेदन करे, तो वह वेदना [illegible] नहीं जाती किंतु वह नवीन बंधका हेतु नहीं होती। इससे पूर्वकी बलवान निर्जरा होती है। आत्मार्थीको यही कर्तव्य है।

"मैं शरीर नहीं हूँ परन्तु उससे भिन्न ज्ञायक आत्मा हूँ, तथा नित्य-शाश्वत हूँ। यह वेदना केवल पुद्गलकी है परन्तु यह मेरा स्वरूप नाश करनेको समर्थ नहीं, अत मुझे खेद नहीं करना चाहिए।" –आत्मार्थीका ऐसा अनुप्रेक्षण होता है।

चिंतित वस्तु जिससे प्राप्त होती है उस मणिको चिंतामणि कहा है, यही यह मनुष्यदेह है कि जिस देहमें-योगमें आत्यंतिक ऐसे सब दुःखोंका क्षय करनेका निश्चय किया तो वह पार पड़ता है।

*

जिसका महात्म्य अचिंत्य है ऐसा सत्संगरूपी कल्पवृक्ष प्राप्त होने पर भी यदि जीव दरिद्र बना रहे, तो इस जगतमें यह ग्यारहवाँ आश्चर्य ही है।

*

उपशम ही जिस ज्ञानका मूल है उस ज्ञानमें तीक्ष्ण वेदना परम निर्जरा मानने योग्य है।

चक्रवर्तीकी समस्त सम्पत्तिसे भी जिसका एक समयमात्र भी अधिक मूल्यवान है ऐसे इस मनुष्यदेहको और परमार्थके अनुकूल ऐसे योगकी प्राप्ति हुई फिर भी यदि जन्म-मरणसे रहित ऐसे परमपदका ध्यान नहीं रहा तो इस मनुष्यत्वको अधिष्ठित ऐसे आत्माको अनन्तबार धिक्कार हो।

लोकसेवा जिसकी जिन्दगीका ध्रुवकाँटा है, वह भले चाहे जैसी श्रीमत्ता, सत्ता या कुटुंब परिवार आदिसे योगवाली हो तो भी वह दुःखरा ही रहता है। सम-शान्ति जिस जिंदगीका ध्रुवकाँटा है, वह भले वह एकाकी, निर्धन और निर्बल हो तो भी सुख का स्थान है।

धर्ममें लौकिक बड़प्पन, मान, महत्व आदिकी इच्छा धर्मका द्रोहरूप है।

*

ज्ञानीका मार्ग सुलभ है परंतु उसे पाना दुर्लभ है यह मार्ग विकट नहीं, सीधा है परंतु उसे पाना विकट है। पहले सच्चा ज्ञानी चाहिए, उसे पहचानना चाहिए, उसकी प्रतीति आनी चाहिए, फिर उसके वचन पर श्रद्धा रखकर निःसंशय हो चलनेसे मार्ग सुलभ है।

*

आये कर्मोको समपरिणाममें वेदन करना-भोग लेना-यह बड़ा पुरुषार्थ है।

हाती

[illegible] आत्माके लिए हो, [illegible] हो, [illegible] आवे, यह [illegible] हो। [illegible] है परन्तु वहाँ [illegible]

रंतु
सार
थे

पुरुष, [illegible] दूसरको यह नहीं [illegible] है।

विभावज्ञानका पुद्गलमें तन्मयता-तादात्म्य भाव नहीं होता।

जिसमें तन्मयता होती है उसे ही हर्ष-शोक होता है।

निमित्त जो है वह अपना कार्य किये बिना नहीं रहता।

*

जीव जब विभाव-परिणाममें प्रवृत्ति करता है तब कर्म बाँधता है और स्वभाव परिणाममें प्रवृत्ति करता है तब कर्म नहीं बाँधता।

*

(वृत्तिका) आत्मामें परिणमन होना, उसमें समा जाना, यही अन्तर्वृत्ति है। पदार्थकी तुच्छता लगी हो तो अन्य वृत्ति रहती है।

पुद्गल द्रव्यकी संपत्ति रहे तो भी वह कभी न कभी चला जायगा ही और जो हमारा नहीं है वह हमारा होनेवाला नहीं है, इसलिए लाचार होकर दीन बनना किस कामका!



तृष्णावान् मनुष्य सदा भिखारी,
सन्तोषी जीव सदा सुखी।



"मिथ्यात्व" अन्तरग्रंथी है,
"परिग्रह" बाह्यग्रंथी है।

जिस द्रव्य, क्षेत्र, काल (और) भावसे सुख-दुःख उदयमें आनेवाला है उसमें इन्द्रादि भी परिवर्तन करनेमें समर्थ नहीं हैं।

*

शुभ कर्मके उदयके समय शत्रु मित्र बन जाता है और अशुभ कर्मके उदयके समय मित्र शत्रु बन जाता है। सुख-दुःखका सही कारण कर्म ही है।

*

दृष्टि जिसकी खुले जाने पर कोई भी शास्त्र, कोई भी अक्षर, कोई भी कथन, कोई भी वचन, कोई भी स्थान प्रायः अहितका कारण नहीं होता।